महापुरुषों की प्रेम-कथाएँ

इलाचन्द्र जोशी

२, मिन्टो रोड — इलाहाबाद — २

मूल्य — २॥)

प्रकाशक :
लहर प्रकाशन
२ मिंटोरोड : इलाहाबाद—२

मुद्रक :
दि इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स लि०
जीरो रोड : इलाहाबाद—३

आवरण चित्र :
कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव

प्रथम संस्करण

महापुरुषों
की
प्रेम-कथाएँ

—: क्रम :—

इस पुस्तक में महापुरुषों के प्रेम-जीवन से संबंधित जो निबंध संगृहीत हुए हैं उनमें से अधिकांश प्रायः बीस वर्ष पूर्व लिखे गये थे। दो—एक अपेक्षाकृत नये निबंध भी जोड़ गये हैं। महापुरुषों का प्रेम-जीवन भारतीय साहित्य संसार में अपेक्षाकृत उपेक्षणीय विषय माना जाता रहा है। पर मेरी दृष्टि में वास्तविकता इसके विपरीत है। महापुरुषों का प्रेम-जीवन उनके संपूर्ण जीवन के विकास का केन्द्रीय शक्ति-स्रोत होता है, अतएव वह किसी भी हालत में उपेक्षा के योग्य नहीं है, यही सोचकर मैंने इन निबंधों को पुस्तक का रूप दिया है।

पुस्तक के नामकरण में थोड़ी सी कमी इस दृष्टि से रह गयी है कि उसमें केवल महापुरुषों के ही नहीं, महानारियों के भी प्रेम-जीवन की चर्चा स्वभावतः की गयी है, दोनों के प्रेम जीवन का रहस्य एक दूसरे का पूरक है। पर नाम कहीं अधिक लंबा न हो जाय इस आशंका से केवल महापुरुषों का ही उल्लेख किया गया है।

इलाचंद्र जोशी

अम्बापाली के महाप्रेमिक

वैशाली के प्रजातंत्र राज्य में शिक्षा, संस्कृति और सभ्यता परिपूर्ण रूप से वर्तमान थी और सभ्यता के गुणों के साथ जो दोष स्वभावतः लगे रहते हैं वे भी वहां उसी तरह मौजूद थे। स्त्री-स्वतंत्रता इस अर्थ में थी कि पर्दा नहीं था। स्त्रियां पढ़ी-लिखी और नाना कलाओं में पारंगत होती थीं। पर स्त्री के यथार्थ अधिकार उन्हें प्राप्त नहीं थे और वे केवल भोग की सामग्री समझी जाती थीं। जो शिक्षा दी जाती थी वह उन्हें इसलिये नहीं कि वे अपने स्वतंत्र अधिकारों को समझें, बल्कि इसलिये कि कला-कुशल होने से वे पुरुषों के कलुषित मन को अधिक आनन्द प्रदान करने में समर्थ होंगी। फल यह देखने में आता था कि समाज में व्यभिचार व कामाचार का प्रचार बेहद बढ़ती पर था। जो लड़कियां बहुत सुन्दरी होती थीं उन्हें तत्कालीन 'समाज पति' भरसक विवाह करने नहीं देते थे और उन्हें राजकुमारों और सामंतों के भोगार्थ वेश्या बनने के लिये बाध्य किया जाता था।

अम्बापाली या आम्रपाली नाम की इतिहास-प्रसिद्ध वेश्या भी इसी प्रकार बचपन में समाज के दलालों के हाथ पड़ कर वेश्या जीवन बिताने के लिये मजबूर की गई। असल में कोई भले घराने की स्त्री उसके पैदा होते ही उसे राजा के उद्यान में एक आम के पेड़ के नीचे छोड़ आई थी। इससे स्पष्ट है कि वह जारपुत्री थी। आम के पेड़ के नीचे पाये जाने से उसका नाम अम्बापाली पड़ा। माली ने उसे पाला और जब वह बड़ी

हो गई तो उसके अकलंक रूप की अनुपम छटा देख कर लोग चकित रह गये। माली ने देखा कि उसके द्वारा अच्छा माल पैदा किया जा सकता है। अतएव उसने उसे वेश्या बना कर छोड़ा।

पर वेश्या बनने पर भी अम्बापाली ने अपनी स्वाभाविक सहृदयता, सौजन्य, सुशीलता आदि गुणों का त्याग नहीं किया। उसके अनिन्द्य-सुन्दर रूप की मोहिनी के साथ साथ उसकी विद्वत्ता और स्वभाव के माधुर्य का आकर्षण धीरे धीरे ऐसा प्रबल मोहात्मक सिद्ध हुआ कि समस्त भारत में उसकी ख्याति फैल गई और दूर दूर से लोग उससे मिलने के लिये आने लगे। धनी लोग लाखों रुपया उस पर निछावर करके अपने तन तथा मन की तुष्टि कर जाते थे और निर्धन विद्वान् लोग मौका मिलने पर केवल दूर से उसके दर्शन करके ही अपने को कृतार्थ समझते थे। वह सुन्दर कविताओं की रचना भी करती थी और विख्यात बौद्ध ग्रंथ 'थेरीगाथा' में अन्यान्य कवयित्रियों की रचनाओं के साथ उसकी भी एक सुन्दर कविता संगृहीत हुई है, जिसमें उसने अपने शारीरिक रूप की निन्दा करते हुए आध्यात्मिक सौन्दर्य का वर्णन करके अपनी अपूर्व कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है। उस समय मगध देश के राजा बिम्बिसार की प्रसिद्धि सर्वत्र फैली हुई थी। उन्होंने भी वैशाली आकर अम्बापाली के साथ लगातार सात दिन तक प्रणय संबंध जारी रक्खा, जिसके फलस्वरूप अम्बापाली को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो पीछे अभय नाम से ख्यात हुआ।

उस समय महात्मा बुद्ध अपने क्रान्तिकारी धर्ममत से तत्कालीन विलास-लालसा-मग्न समाज में एक नयी आध्यात्मिक चेतना संचारित कर रहे थे और अम्बापाली का लड़का अभय त्याग के भाव से प्रेरित होकर बौद्धों के सन्यासाश्रम में प्रविष्ट हो गया। अपनी माता के पापमय

जीवन से उसे आन्तरिक घृणा थी और उस घृणा से मुक्ति पाने के लिये उसने बौद्ध संघ की शरण पकड़ी। अपने प्रिय पुत्र के इस परम त्याग से अम्बापाली का हृदय मार्मिक पीड़ा से व्यथित हो उठा और उसे अपने जीवन पर घृणा होने लगी। पर जिस प्रकार का भोगैश्वर्यमय जीवन बिताने की वह इतने वर्षों से आदी हो गई थी वह जल्दी छूट नहीं सकता था। तथापि उसने धीरे धीरे अपने जीवन में सादगी लाने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया।

एक दिन अम्बापाली ने सुना कि उनके विराट उद्यान के बाहर महात्मा बुद्ध अपने शिष्यों सहित आकर ठहरे हुए हैं। उसके मन में उस सर्वजन-प्रशंसित, त्यागवादी संन्यासी महात्मा के दर्शनों के लिये एक कुतूहल सा उत्पन्न हुआ। अश्वघोष ने बड़े मार्मिक शब्दों में महात्मा बुद्ध से अम्बापाली के मिलने का वर्णन किया है। अपने दासियों को साथ लेकर वह गौरवमयी रमणी महात्मा से मिलने गई। उसने किसी प्रकार का बनाव–सिंगार नहीं किया था और सादी पोशाक में, निराभरण वेश में, एक पुजारिणी के रूप में वह चली जा रही थी। उसकी उस समय की सहज-स्वाभाविक सौन्दर्य-मंडित शोभा देखने योग्य थी। शान्ति, स्थिरता और सुगम्भीरता से जब वह बुद्ध के पास पहुंची तो उसे देवी के समान महिमामयी जान कर सब भिक्षुक चकित रह गये। बुद्ध ने दूर से ही उसे आते देखकर भिक्षुओं से कहा : "इसमें सन्देह नहीं कि यह अनुपम सुन्दरी है और संन्यासियों के मन को मोह सकती है, इसलिये तुम लोगों को चाहिये कि अपनी बुद्धि स्थिर रक्खो और ज्ञान के बल से अपने मन को वश में किये रहो। भले ही मनुष्य एक भयंकर व्याघ्र के जबड़ों में फंस जाय अथवा वधिक की तेज छुरी के नीचे आ जाय, पर एक स्त्री के मोहालिंगन में फँस कर अपना सर्वनाश न करे। स्त्री सदा सोते-जागते, उठने-बैठते

अपने हाव-भाव और नाज-नखरे दिखा कर पुरुष को रिझाने की चेष्टा में रहती है। यहां तक कि जब वह एक निर्जीव चित्र के रूप में अंकित की जाती है तब भी वह पुरुषों के हृदयों को लुभाने की चेष्टा करती है। इसलिये यह सोचना चाहिये कि किस प्रकार माया-रूपिणी स्त्री से अपनी रक्षा की जाय। उसके हास्य तथा क्रन्दन दोनों को अनर्थ कार्य समझना चाहिये। उसके लज्जानमित शरीर, लतायमान बाहुपाश तथा आलुलायित केश को भयंकर नागपाश मनना चाहिये। उसके सम्मोहक रूप से सदा अलग रहने की चेष्टा करनी चाहिये।"

जब अम्बापाली बुद्ध के समीप आई तो उसने दंडवत होकर प्रणाम किया और बुद्ध की आज्ञानुसार एक स्थान पर बैठ गई। उस विश्व प्रेम में पागल महात्मा का त्यागालंकृत प्रशांत, अपरूप रूप एक अलौकिक तेज के आलोक से चमक रहा था। अम्बापाली हर्ष-गद्गद् हो कर अतृप्त नेत्रों से उस स्निग्ध करुणमय रूपसुधा का पान करती हुई केवल चर्म चक्षुओं से नहीं, अन्तःचक्षुओं से भी देख रही थी। अपने भोगमय जीवन में उसने अनेक प्रतिष्ठित राजकुमारों तथा विद्वानों का परिचय प्राप्त किया था, पर इस तेजस्वी महात्मा की देवोपम महिमा का दृश्य उसके लिये एकदम नया था। उसकी आत्मा का कण कण रह रह कर बुद्ध के आध्यात्मिक रूप के अपार सागर में विलीन होने के लिये लालायित होने लगा। एक क्षण में उसे जो दिव्य अनुभूति प्राप्त हुई वह इसके पहले जीवन भर न हुई थी। प्रेम की जैसी धारणा तब तक उसके मन में बद्धमूल थी वह पल में छिन्न भिन्न हो गई। तब तक प्रेम की कोई भी अनुभूति उसके शरीर और अधिक से अधिक उसके हृदय की बाहरी परत को स्पर्श करके रह जाती थी। उससे अधिक गहराई में प्रवेश नहीं कर पाती थी। पर आज उसकी आत्मा के अन्तरतम प्रदेश से हर्षोल्लसित प्रेम-धारा का कलरोल उच्छ्वसित हो रहा था।

महात्मा बुद्ध ने उसे धर्म का मर्म समझाना शुरू कर दिया। वह मन्त्र-मुग्ध हो कर सुन रही थी। उसकी आत्मा में भाव-गद्गद उल्लास का क्रान्तिकारी तूफान मचने लगा, जैसे किसी ने जादू की छड़ी से उसके तामसिक हृदय को दिव्य आभा से आलोकित कर दिया हो।

दूसरे दिन उसने बुद्ध को अपने यहाँ भोजन के लिए निमंत्रण दिया। उसी दिन लिच्छवी वंश के राजकुमारों ने भी उन्हें अपने यहाँ निमंत्रित किया था, पर उन्होंने अम्बापाली का ही निमंत्रण स्वीकार किया। उनकी शिष्य मंडली उनके इस अद्भुत विचार से चकित रह गई। एक कलंकिना के यहाँ जाँयगे महात्मा बुद्ध? वे लोग आपस में कानाफूसी करने लगे, पर बुद्ध अपने निश्चय पर अटल रहे। असल बात यह थी की यद्यपि अम्बापाली से उनकी विशेष बातें नहीं हो पाई थीं, तथापि वह किसी व्यक्ति की आँखों से व्यक्त होने वाले भावों से ही उसके मर्म की बातें मालूम करने की शक्ति रखते थे। अम्बापाली के सम्बन्ध में जो धारणा पहले उनके मन में जमी थी, वह कुछ ही समय के बाद तिरोहित हो गई थी। वह अपनी भूल समझ गये थे। उन्हें मालूम हो गया था की किसी स्त्री का वेश्यापन उसका वाह्य संस्कार मात्र है। उसके भीतर की विशुद्ध आत्मा पर उसका जरा सा भी दाग नहीं पड सकता। अम्बापाली के मुख पर आध्यात्मिक उल्लास का एकनिष्ठ भाव देख कर वह उसके प्रति श्रद्धावान हो उठे थे। अम्बापाली ने अपूर्व आनन्द के साथ बुद्ध को भोजन कराया। समस्त विश्व को समान रूप से आलिंगित करने वाला निर्विकार, निष्काम महात्मा आज संसार का नहीं बल्कि अकेले उसका अतिथि बना हुआ था। वह प्रेम-विह्वल और पुलक गद्गद् होकर मन ही मन कह रही थी: "हे चिर-प्रेमिक! इतने दिनों तक कहाँ छिपे रहे? तुम्हें भूल कर, कर्मचक्र के फेर में पड़ कर, इतने दिनों तक मैं पाप-पंक में भले ही डूबी होऊं, पर

तुम्हें मैं जन्म-जन्मान्तर से जानती हूँ। नहीं तो क्षणमात्र के दर्शन से ही मेरे अणु अणु में, रोम-रोम में ऐसा उन्माद क्यों समा गया? आओ, आओ! युग-युगांत के बाद हम दोनों का यह महामिलन इस नश्वर जीवन में अपना अमिट चिन्ह छोड़ जाये, यही आज मेरी आंतरिक कामना है।"

तब से लगातार कई दिनों तक बुद्ध ने अम्बापाली के यहाँ भोजन किया। लोग इस बात से उनके चरित्र पर संदेह करने लगे। पर वह तो मानापमान के अतीत थे।

बुद्ध के चले जाने पर अम्बापाली के हृदय में हाहाकार मचने लगा। भोग की एक एक सामग्री सहस्रों बिच्छुओं के डंको की ज्वाला की तरह जान पड़ने लगी। उसने अपनी लाखों रुपयों की सम्पत्ति बौद्ध मत के प्रचार के लिए दान कर दी और स्वयं संन्यासिनी बन कर अपने अनन्तकालीन प्रेमिक के ध्यान में दिन रात मग्न रहने लगी।

आबेलार और एलोइजा के मर्मस्पर्शी प्रेम का दुःखान्त इतिहास

आबेलार का जन्म १०७६ में फ्रांस के अन्तर्गत पाले नामक स्थान में हुआ वह अपने पिता का प्रथम पुत्र था। उसके पिता की आर्थिक परिस्थिति खासी अच्छी थी। बचपन में ही उसकी रुचि विद्यार्जन की ओर हो गई थी। बहुत छोटी अवस्था में उसके पिता ने उसे पैरिस के एक प्रख्यात विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजा। उस समय फ्रांस में सर्वत्र प्रत्यक्षवाद का बोलबाला था। आबेलार ने कुछ ही समय के भीतर दर्शन तथा तर्कशास्त्र में आश्चर्यजनक उन्नति करके स्वयं अपने गुरु से तर्क करके प्रत्यक्षवाद का खंडन करना प्रारंभ कर दिया। इस गुस्ताख लड़के का साहस देख कर गुरु दंग रह गया। उसकी तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता से वह अवश्य चकित था, पर अपने सिद्धान्त का खंडन उसे अच्छा नहीं मालूम हुआ और उसने आबेलार को इस तरह तंग करना शुरु कर दिया कि उसे पैरिस छोड़ कर भागना पड़ा।

अभी वह लड़का ही था कि उसने साँ (सेन्ट) जेनेवियेन में अपनी एक निजी पाठशाला खोल दी और अपने से बड़ी अवस्था वाले छात्रों को दार्शनिक शिक्षा देने लगा। धीरे धीरे उसकी विद्वत्ता की ख्याति फैलती गई और जब जब उसने उस समय के श्रेष्ठ दार्शनिक आंसेल्म को भी दीर्घ तर्क द्वारा हरा दिया तो देश भर में उसकी धाक जम गई। आबेलार

का व्यक्तित्व भी बड़ा आकर्षक था। और जो उससे मिलने जाता वही उसके अनूप रूप और प्रगाढ़ पाण्डित्य पर एक साथ ही मोहित हो जाता। केवल फ्रांस से ही नहीं यूरोप के अन्यान्य देशों से भी उसके पास शिष्य लोग आने लगे।

जब उसकी ख्याति चरम सीमा को पहुँच गई तो वह पैरिस चला आया। पुस्तकों की बिक्री तथा मालदार शिष्यों के दान से वह अपरिमित धन प्राप्त कर रहा था। इधर सुन्दरी स्त्रियां भी उसके रूप, गुण और ख्याति पर मुग्ध होकर उसे माया-जाल में फँसाने की चेष्टा कर रही थीं। एक तरफ़ तो वह धर्म सम्बन्धी विषयों की चर्चा करके धन पैदा कर रहा था और दूसरी ओर 'कामिनी-कांचन' के फेर में पड़ने लगा था। आबेलार ने अपनी आत्मकथा में स्वयं लिखा है: "धन और ख्याति के मद से मत्त होकर मैं कामुकता के पंक में निमज्जित होने लगा और ज्यों ज्यों धर्म तथा दर्शन विषयक चर्चा में अधिकाधिक रत होता जाता था त्यों-त्यों मेरा नैतिक पतन भी बढ़ता ही चला जाता था।"

वास्तव में आबेलार न उतना कामुक था जितना उसने अपने को बताया है और न उसका नैतिक पतन ही विशेष आतंकोत्पादक था। असल बात यह थी कि वह भावुक प्रकृति का दार्शनिक था। भावुकता और प्रेम का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। जो व्यक्ति भावुक होगा वह बिना प्रेम के रह नहीं सकता। उसे या तो भगवान का प्रेम चाहिये या मनुष्य-विशेष का प्रेम। आबेलार की उस समय ऐसी अवस्था हो गई थी कि मानव-प्रेम ही उसे अधिक रसमय मालूम हो रहा था।

पैरिस में एलोइजा नाम की एक सुन्दरी लड़की की विद्वत्ता की चर्चा दूर दूर तक फैल चुकी थी। उन दिनों फ्रांस में स्त्री-शिक्षा का प्रचार बिलकुल नहीं था। इसलिये एक सुन्दरी लड़की के केवल शिक्षित ही नहीं प्रतिभाशालिनी भी होने की बात कुछ साधारण आकर्षण

नहीं रखती थी। आबेलार की बड़ी इच्छा हुई कि उससे किसी तरह मिला जाय। और कुछ नहीं तो कम से कम ऐसी गुणवती और रूपवती के दर्शन अवश्य ही करने चाहिये। इस विचार ने ऐसा जोर बांधा कि यद्यपि तात्कालिक फ्रांसीसी समाज में नवयुवतियों के साथ अपरिचित नवयुवकों के साधारण मेल-मिलाप के सम्बन्ध में भी बहुत सी बाधाएं थीं, तथापि वह किसी न किसी उपाय से उससे मिलने में समर्थ हुआ। प्रथम दर्शन से ही उसकी आत्मा बुरी तरह व्याकुल हो उठी और उसके शरीर और मन का प्रत्येक अणु उस परम सुन्दरी विदुषी लड़की के प्रेमोन्माद से तरंगित होने लगा।

एलोइजा के माता पिता नहीं थे। उसके चाचा ने उसे पाला था और वह उसे अपनी लड़की से भी अधिक मानता था। पर था वह बड़ा लोभी। आबेलार ने उसके पास आकर एक दिन कहा: "जिस मकान में मैं रहता हूँ वहां खाने पीने तथा रहने का प्रबन्ध इतना खराब है कि मेरे अध्ययन में उससे बाधा पहुंचती है। इसलिये यदि आप मुझे अपने यहां रखने को राजी हों तो मैं आपकी इच्छानुसार आपको भाड़ा और खाने पीने का खर्चा देने को तैयार हूँ।" एलोइजा के चाचा फुलवर ने जो रकम प्रतिमास देने के लिये कहा वह यद्यपि बहुत अधिक थी, पर आबेलार तत्काल राजी हो गया। और उसी दिन वह फुलवर के यहां अपना सब सामान उठा कर ले आया।

फुलवर को यह भी लोभ था कि आबेलार जैसा विद्वान उसकी भतीजी को बहुत अच्छी शिक्षा दे सकता है। उसने आबेलार को केवल एलोइजा की शिक्षा का ही पूरा भार नहीं सौंपा, बल्कि उसे इस बात की पूरी स्वतंत्रता दे दी कि जब चाहे वह उसे कहना न मानने पर पीट भी सकता है। आबेलार स्वयं लिखता है: "मेरे पवित्र जीवन की ख्याति सुनकर फुलवर ने उस सरल-स्वभाव मेमने को भेड़िये के हवाले कर दिया।"

इस स्वतंत्रता का जो परिणाम होना चाहिये था वही हुआ। एलोइजा ने उसकी विद्वत्ता की ख्याति पहले से सुन रक्खी थी और अब उसके आकर्षक व्यक्तित्व को देख कर वह भी उस पर उसी तरह मुग्ध हो गई जिस प्रकार आबेलार उस पर। आज तक वह अपने गम्भीर और कठोर स्वभाव चाचा के साथ शुष्क तथा नीरस जीवन बिता रही थी और उसका विद्वत्ता तथा भावुकतापूर्ण हृदय प्रेम की प्रबल पिपासा से तड़प रहा था। आबेलार को पाकर उसके ऊसर हृदय में सरस प्रेम का संचार होने लगा और उसके रुद्ध हृदय का बाँध टूट पड़ा। दोनों अनन्त यौवन के उद्दाम रस में हिलोरें लेने और कालिदास की अलकापुरी के से स्वप्न को प्रत्यक्ष देखने लगे। एलोइजा का कठिन पुस्तकों का पाठ पढ़ाना तो एक बहाना मात्र; था असल में आबेलार उसे प्रेम की शिक्षा दे रहा था पर इस सफाई से कि एलोइजा समझ जाती थी कि वे प्रेमिक की मीठी चुटकियाँ हैं कठिन हृदय शिक्षक के घूँसे नहीं आबेलार स्वयं लिखता है कि उन्मत्त प्रेम के वासना विलास में वे दोनों इस तरह निमज्जित हो गये थे कि अक्सर बाह्य जगत की सुधि बुधि खो बैठते थे। दार्शनिक विषयों पर मनन करने के लिये उसे समय ही नहीं मिलता था और उनका जो कुछ भी चर्चा उसे स्कूल में करनी पड़ती वह अन्य मनस्कता के कारण ठीक नहीं होती थी। पहले ही कहा जाचुका है कि वह एक पाठशाला में अध्यापक था। उसे वहां नित्य जाना पड़ता पर उसका जी वहां बिलकुल न लगता। आबेलार लिखता है: "मेरे इस पतन की खबर अवश्य ही मेरे छात्रों को लग गई होगी, क्योंकि जिस भयंकर आग से मैं जला जाता था वह दबाने पर कभी नहीं दब या छिप सकती थी। बहुत से बेचारे अवश्य ही मेरे लिये रोते होंगे, क्योंकि मेरे प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी। और तब तक वे लोग मुझे ब्रह्मचारी ही जानते थे। पर मैं कर क्या सकता था। मुझे विश्वास है कि मेरी स्थितिमें यदि स्वयं देवता भी होता तो वह भी उन्मत्त हुए बिना न रहता। एलोइजा! प्यारी एलोइजा

तुम्हारा प्रेम पाकर मैं अपने को धन्य समझता हूँ। दुनिया ने तुम्हारी खातिर मुझे बदनाम करके मेरा सर्व नाश किया है, पर फिर भी मैं तुम्हे भूल नहीं सकता। मैंने तुम्हारे साथ जो अन्याय किया हो उसे क्षमा करो।"

'अति सर्वत्र वर्जियेत्" की नीति पर जो व्यक्ति ध्यान नहीं देता उसका सर्वनाश अवश्यम्भावी है। अबेलार और एलोइजा की अत्यधिक विलासिता का भी वही परिणाम हुआ जो होना चाहिये। एलोइजा के चाचा को उनके अनुचित सबन्ध की खबर लग गई। यह बात जब आबेलार को मालूम हुई तो वह वहां से भाग निकला, पर उसके भागने से उन दोनों का प्रेम घटने के बजाय दूना बढ़ गया और अबेलार के पश्चात्ताप-सूचक शब्दों में "हम दोनों और भी बेशरम बन गये और इस बेशर्मी के ही सबब हमें नित्य नई सूझ पैदा होने लगी।"

कुछ ही समय बाद एलोइजा ने उसे एक पत्र लिख कर सूचित किया कि उसे गर्भ रह गया है और उससे सलाह पूछी कि इस परिस्थिति में अब क्या किया जाना चाहिये। आबेलार पत्र पाने के बाद एकदिन मौका पाकर रात के समय चुपके से उसे भगा ले गया और उसे लेकर अपने गांव में चला आया।

एलोइजा के चाचा को उसके भागने की खबर जब लगी तो वह प्रायः पागल हो गया। उसी उन्माद अवस्था में वह आबेलार के यहां पहुँचा। प्रतिहिंसा की जबरदस्त आग उसके क्षुब्ध हृदय में धधक रही थी। पर जब वह आबेलार के पास पहुँचा तो इस बात का निश्चय ही न कर पाया कि बदला कैसे लिया जाय। उसका खून करके, अधमरा करके, या कैसे ? पर आबेलार ने स्वयं उसकी हालत पर तरस खा कर उससे माफी मांगी और कहा: "मुझे बड़ा खेद है कि मैं आपकी भतीजी को भगाकर ले आया। प्रेम ने मेरी मति ही मार डाली थी। कुछ भी हो, अब आप जैसा कहें मैं वैसा करने को तैयार हूँ। अगर आप चाहें तो मैं उससे विवाह करने को

तैयार हूँ, पर गुप्त रूप से। क्योंकि मैं अपनी प्रसिद्धि में धब्बा लगने देना नहीं चाहता ।" फुलवर —एलोइज के चचा ने इस बात पर बड़ी प्रसन्नता का भाव दिखाया, पर उसके मनमें कुछ दूसरी ही बात थी।

इधर एलोइजा ने आबेलार की बहन के घर में रह कर एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम रखा गया एस्ट्रोलाबे फुलवर से बातें होने पर आबेलार एलोइजा के पास अपने गांव में गया और उसे सारी परिस्थिति से परिचित करा कर गुप्त विवाह कर लेने की प्रार्थना की। पर वह कतई इस बात पर राजी न हुई। अपने स्वार्थ के लिये नहीं बल्कि अपने प्रेमिक के स्वार्थ के लिये उसने विवाह करने से इनकार किया। उसने कहा : "विवाह हो जाने से तुम्हारी सारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जायगी। हम दोनों बिना विवाह के सुखी हैं। क्या हृदय का बन्धन लौकिक बंधन से कुछ कम दृढ़ है? मैं अपनी खातिर तुम्हारा अपमान होते कदापि न देख सकूँगी। तुम्हारे आगे गौरवमय जीवन का विपुल विस्तार पड़ा हुआ है। एक तुच्छ स्त्री की खातिर तुम्हें उसे ठुकराना नहीं चाहिये। मुझे तुम पर पूरा विश्वास है और मैं इसी प्रकार अविवाहित अवस्था में तुम्हारी दासी बन कर रहना चाहती हूँ।"

पर आबेलार ने विवाह करना ही उचित समझा, अतएव एक दिन पैरिस में जाकर दोनों गुप्त रूप से (पर फुलवर की उपस्थिति में) विवाह-बंधन में बंध गये। अपना बच्चा वे आबेलार की बहन के पास ही छोड़ आये थे। पर विवाह होते ही फुलवर हल्ला मचाने लगा कि आबेलार ने उसकी भतीजी के साथ विवाह कर लिया है। उसका ऐसा करना उचित नहीं था। क्योंकि भतीजी के पलायन से समाज में उसकी नाक कट गई थी। आबेलार की प्रतिष्ठा में भी इस बात के प्रचार से बट्टा आता था, क्योंकि वह धार्मिक शिक्षक के रूप में जनता में विख्यात हो चुका था और तत्कालीन प्रचलित रीति-नीति के अनुसार धार्मिक शिक्षक को आजीवन

ब्रह्मचारी रहना पड़ता था। यद्यपि वह और एलोइजा लोगों के आगे विवाह के समाचार का खंडन करते रहे, पर वे लोगों को अधिक समय तक धोखा न दे सके। परिस्थिति जटिल देख कर आबेलार ने एलोइजा को पैरिस के पास आर्गेनतइयी के मठ में संन्यासिनी के रूप में रहने के लिये भेज दिया। फुलबर इस बात पर आग-भभूका हो गया। एक रात वह आबेलार के नौकर से मिल कर चुपके से उसके कमरे में घुसा और उसकी नींद की हालत में उसने तेज छुरी से आबेलार का गुप्तांग काट कर फेंक दिया। इस नारकीय क्रूरता से आबेलार की जो दुर्दशा हुई होगी उसकी कल्पना सहज में की जा सकती है। तब से आबेलार ने एक मात्र धार्मिक चिंता में ही अपना जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया। एलोइजा ने मठ में चार बड़े बड़े प्रेम पत्र लिखे थे जो संसार के पत्र साहित्य में अद्वितीय समझे जाते हैं। कई यूरोपियन कवियों ने आबेलार और एलोइजा की प्रेम-कथा पर गंभीर, रसपूर्ण और मर्मस्पर्शी कविताएं लिखी हैं। प्रसिद्ध क्रान्ति-प्रचारक रूसो ने अपने एक विश्वविख्यात उपन्यास का नाम ही एलोइजा की अमर स्मृति में 'नयी एलोइजा' रखा है।

मीरा की स्वर्गीय प्रेमाकांक्षा

प्रेम की निदारुण ज्वाला लेकर जो व्यक्ति पैदा होता है उसका हृदय उस पुण्याग्नि की पावन आंच में जीवन भर तपता रहता है। इस तपन में पीड़ा अवश्य है, पर साथ ही कितना आनन्द है !

मीरा भी जन्म से ही इस ज्वाला को अपने मर्म में छिपा कर आई थी, इसलिये उनका सारा जीवन निर्मम संताप तथा साथ ही अनिवर्चनीय प्रेमोल्लास में बीता। मीरा के जीवन इतिहास के संबंध में अभी तक ठीक ठीक गवेषणा नहीं हुई है, तथापि जितनी भी बातें मालूम हो सकी हैं उनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ईस्वी सन् १४९९ के करीब उनका जन्म मारवाड़ के अन्तर्गत कुड़की ग्राम में हुआ और सन् १५१६ के लगभग उनका विवाह सिसोदिया वंश के महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हुआ। यह बात भी प्रसिद्ध है कि विवाह के दो एक वर्ष बाद ही वह विधवा हो गई।

सामाजिक रूप से वह अवश्य विधवा हो गई, पर उनका अन्तःकरण उनसे कहता था कि वह चिर-सुहागिन हैं। संसार की कोई भी शक्ति उन्हें अनन्त कालीन प्रेम रसायन के पान से वंचित नहीं कर सकती। कुछ लोगों का अनुमान है कि मीरा के गिरधर गोपाल वास्तव में इसी लोक के एक सजीव व्यक्ति थे जिनके प्रति विवाह के पहले से ही मीरा के मन में शुद्ध अकलुष और प्रगाढ़ भाव वेदना मय प्रेम उत्पन्न हो गया था।

पर इस सम्बंध में निश्चित रूप में कुछ कहा नहीं जा सकता, क्योंकि इसका कोई समुचित प्रमाण अभी तक किसी को नहीं मिला है। पर इतना

अवश्य कहा जा सकता है कि कोई एक व्यक्ति अवश्य ही ऐसा रहा होगा जिसके प्रति मीरा अपने अन्तस्तल भेदी प्रगाढ़ प्रेम की विह्वल वेदना का मार्मिक अनुभव किया होगा क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है कि विना किसी सजीव मूर्ति के प्रति प्रेम का अनुभव किये कभी भगवत् प्रेमका रसास्वादन नहीं किया जा सकता। गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी को अधिकांश बातें उपयुक्त प्रमाणाभाव से प्रसिद्ध हैं। उनकी स्त्री के अस्तित्व के सम्बंध में भी अभी तक कोई युक्ति युक्त प्रमाण नहीं मिला है, तथापि उनकी स्त्री के संबंध में जो कथा प्रचलित है वह रूपक की दृष्टि से परम सत्य है। प्रेम का अस्तित्व जब तक किसी न किसी रूप में न रहा हो तब तक वास्तविक भगवत्प्रेम कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। तुलसीदास का प्रेम अवश्य ही किसो न किसी से रहा है। चाहे वह अपनी स्त्री रही हो या कोई और। तुलसीदास की ही तरह सूरदास के संबंध में भी यह कहा जाता है कि वह आधी रात को एक बहती हुई लाश पर चढ़ कर एक बाढ़ आई हुई नदी पार करके एक सर्प को रस्सी सकम्ह कर उसके सहारे अपने प्रेयसी के कोठे पर चढ़ गये। सूरदास की प्रेयसी एक वेश्या बताई जाती है और तुलसीदास के संबंध में कहा जाता है कि वह उनकी स्त्री थी। इन गोलमाल की बातों से शक होता है कि तुलसीदास का विवाह भी हुआ था या नहीं। पर किसी व्यक्ति के प्रति गहन प्रेम का अनुभव उन्होंने भक्तिरस का अनुभव करने के पहले अवश्य किया होगा। तुलसीदास का वही प्रेम राम की अपूर्व भक्ति में परिणित हो गया। सूरदास के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। बंगाल के महाकवि चण्डीदास ने एक धोबिन के प्रेम से भगवत्साक्षात्कार किया। चण्डीदास के बाद बंगाल के वैष्णव कवियों की कविताओं में शृंगार रस की बाढ़ आ गयी। पर वह भगवत्-शृंगार रस था और साधारण प्रेम के अर्थ में उसका उपयोग करने की वैष्णव कवियों ने

जनता को सख्त मनाही कर दी थी। रवीन्द्रनाथ 'वैष्णव कविता' शीर्षक एक कविता में वैष्णव कवियों को संबोधित करते हुए लिखते हैं :

"हे वैष्णव कवि, सच बताओ, तुमने यह प्रेम कहां, किससे पाया? किसकी प्रेम-विह्वल अश्रु-गद्गद् आँखें देखकर तुम्हें राधिका की अश्रुपूर्ण आंखों का स्मरण हो आया था? आज हाय, उसी के नारी-हृदय से संचित धन से तुम उसी को वंचित करके कहते हो कि यह सब प्रेम-गान मानव-संग स्पर्श-वर्जित और अलौकिक है और इसमें मनुष्य का कोई अधिकार नहीं है।"

इसके पहले इसी कविता में रवीन्द्रनाथ ने आन्तरिक वेदना के साथ लिखा है : "क्या राधा कृष्ण की प्रेम लीला का वर्णन करने वाले वैष्णव कवियों का गान केवल वैकुंठ के लिये ही है? पूर्वराग, अनुराग, मान-अभिमान, प्रणय-मिलन आदि का सरस वर्णन केवल देवताओं के लिये ही है? यह प्रेमामृतधारा क्या हम मर्त्य निवासी दीन हीन प्राणियों के हृदय की तप्त प्रेम तृषा मिटाने वाली नहीं है?" रवीन्द्रनाथ की यह कविता बहुत लम्बी है और बहुत ही सुन्दर। इस कविता में उन्होंने दर्शाया है कि प्रेम-पिपासु मनुष्य को देवताओं अर्थात् राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला में रस लेने और उसे मर्त्यवासी साधारण स्त्री-पुरुषों के प्रेम का उन्नत रूप समझने का पूरा अधिकार है। और उस उन्नत प्रेम की उत्पत्ति भी साधारण मनुष्यों के प्रेम से ही हुई।

हमारा कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि मीरा, तुलसी या सूर का किसी से कलुषित प्रेम-सम्बन्ध रहा होगा। पर इतना हम अवश्य कहेंगे कि बिना किसी व्यक्ति के प्रति पवित्र आध्यात्मिक प्रेम की उद्दीप्त अनुभूति पोषित किये मीरा कृष्ण के प्रति कदापि उस मर्मच्छेदी निगूढ़

प्रेम का अनुभव न कर सकती जो उसके गीतों में व्यक्त हुआ है। बहुत संभव है, मीरा के प्रेम-पात्र को उसकी गुप्त प्रेमानुभूति की कुछ खबर ही न रही होगी। गुप्त प्रेम की अव्यक्त शक्ति ज्वालामुखी की आग की तरह बड़ी प्रचंड होती है और जब यह अवसर पाकर किसी रूप में बाहर फूट निकलती है तो जड़ जगत की निश्चेष्टता में प्रेम का तूफान मचा देती है। मीरा के प्रेम ने भी यही किया। जब उसका गुप्त प्रेम लोक लाज खोकर कृष्ण प्रेम की उद्दाम तरंगों के रूप में अभिव्यक्त हुआ तो सारा समाज और संसार चकित और विभ्रान्त हो उठा। मीरा ने ऐसे युग में और ऐसे समाज में जन्म लिया था कि उसकी उन्मत्त भगवत्-प्रीति के उन्नत स्वरूप की यथार्थता न समझ कर लोग उसे कलंकिता और कुलटा समझने लगे थे, पर उसके अपूर्व तथा महिमान्वित प्रेमोन्माद की प्रदीप्त ज्वाला को बुझाने की शक्ति स्वयं ब्रह्मा में भी नहीं थी।

मीरा के प्रेम की प्रबलता का परिचय इसी बात से मिल सकता है कि उसने कृष्ण को पति के रूप में वरण कर उनके साथ उसी प्रकार के राग-रंग तथा प्रेम की उसी ढंग की किलोलों का वर्णन मगन मन होकर किया है जो सांसारिक प्रेमियों की काम लीला में पाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि प्रेम और काम का अटूट सबंध है। दोनों के गुण-धर्म में अंतर नहीं है। दोनों का मूल स्रोत एक ही है। मूल वृत्ति एक ही है। यही वृत्ति जब विकसित होते होते अत्यन्त उन्नत रूप धारण कर लेती है तो भगवत् प्रेम में परिणत हो जाती है, और वही जब ह्रासमार्ग ग्रहण करके विकृत अवस्था को पहुँच जाती है तो जघन्य और वीभत्स कामुकता के रूप में व्यक्त होने लगती है। जिन लोगों की धारणा है कि भगवत् प्रेमी भक्तों तथा संसारत्यागी महात्माओं में काम-वृत्ति का लेश भी वर्तमान नही रहता और वे बिलकुल भिन्न वृत्ति से प्रेरित होकर ब्रह्मानन्द का

अनुभव करते हैं, वे लोग काम वृत्ति के अतलस्पर्शी रहस्य को अभी तक समझे नहीं हैं। इस वृत्ति की विकृति अवश्य ही निन्दानीय है, पर इसके अस्तित्व को आप किसी भी उपाय से मूलतः मिटा नहीं सकते। प्रश्न केवल यही रह जाता है कि आप इस मूल वृत्ति को नीचे घृणित नारकीय कुंड की ओर ढकेलना चाहते हैं या ऊपर अपूर्व सुन्दर प्रेम के दिव्य प्रकाशित आनन्द लोक की ओर। मीरा ने इस दूसरे मार्ग को ही सर्वांतःकरण से अपनाया और मनुष्य की प्रेम वृत्ति को महा-महिम रूप देकर उसकी अगाध रस-पिपासा को कृष्णानुराग के अमृत से शान्त किया। मीरा के एक एक पद से उसके प्रेम-मगन हृदय के अमर वेदना-सागर की पुण्य धाराएं उमड़ चली हैं। उसकी निर्मलता से इस विकृत कामुकता के युग में हम लोगों की अपरिष्कृत वृत्तियां शुद्धता और पवित्रता प्राप्त करें हम यही कामना करते हैं।

सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका चार्लोट ब्रोंटे के हताश प्रेमिक

चार्लोट ब्रोंटे का प्रथम उपन्यास 'जेन आयर' जब १८४७ में प्रकाशित हुआ तो साहित्य संसार उसकी अपरिचिता लेखिका की अज्ञात प्रतिभा देख कर चकित हो गया। पर चार्लोट के पिता को, जो एक पादड़ी था, उसके प्रकाशन की मुतलक खबर नहीं थी। उसे स्वप्न में भी इस बात का ख्याल नहीं था कि उसकी लड़की कोई किताब लिख सकती है। लड़की ने छपने के बहुत दिन बाद जब बाप के हाथ में पुस्तक की एक कापी दी तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पर उसे खुशी नहीं हुई। उसने लड़की से स्पष्ट ही अपना यह मत प्रकट कर दिया कि उसने उपन्यास लिख कर व्यर्थ में अपना समय और पैसा नष्ट किया है।

ऐसे नीरस पिता के शासन में चार्लोट के दिन बीते थे। इसलिये उसका सांसारिक जीवन सुखमय न होने से उसने अपना मानसिक जगत भावमय बना कर उसे सुन्दर स्वप्नों से सजा रक्खा था। उसके समय तक अंगरेजी उपन्यासों में स्त्री को केवल एक पुरुषाधीन, स्वतंत्र-इच्छा-रहित, निर्जीव भोग-प्रतिमा के रूप में दिखाया जाता था, पर चार्लोट ने 'जेन आयर' में यह प्रदर्शित किया कि स्त्री में भी जीवन की गंभीरता और महत्ता पर सोचने और समझने की शक्ति वर्तमान है और वह भी अपनी इच्छा-

नुसार प्रेम करना जानती है। जनता इस समाज-विरुद्ध आदर्श से चौंकी, पर लेखिका की कलापूर्ण लेखनी के चमत्कार की प्रशंसा सब को करनी पड़ी।

चौर्लोट की आयु तब ३० वर्ष से अधिक हो चुकी थी। पर आश्चर्य की बात थी कि जो लेखिका अपनी रचनाओं में अपनी नायकाओं की प्रबल-प्रेमानुभूति का इतना सुन्दर वर्णन कर चुकी थी वह स्वयं अभी तक प्रेम-सुधा के आनन्दमय रस से वंचित थी। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह प्रेमतत्व को नहीं समझती थी, पर उसके प्रेम का आदर्श इतना बड़ा था कि उसने बहुत से प्रेमिकों के प्रस्तावों को अस्वीकृत कर दिया। प्रेम की प्यास उसे बहुत सता रही थी। पर चातक प्यासा भले ही मर जाय, साधारण जल कदापि नहीं पियेगा।

उसकी एक सखी के भाई ने उससे जब विवाह का प्रस्ताव किया तो उसने स्वीकार नहीं किया। और इसका कारण बतलाते हुए अपनी सखी को लिखा : "मैंने अपने मन में यह प्रश्न किया कि क्या मैं उससे उतना प्रेम करती हूँ जितना एक स्त्री को अपने भावी पति से करना चाहिये? खेद है कि मेरे मन ने सकारात्मक उत्तर दिया नहीं। जब तक मेरे मन में उसके प्रति ऐसा प्रबल प्रेम न हो कि मैं एक छोटी सी बात पर भी उसकी खातिर मरने को तैयार हो जाऊँ तब तक उससे विवाह करना कदापि उचित नहीं है।"

इसके बाद एक मनचले आयरिश युवक ने केवल दो दिन उसके साथ परिचय होने पर उससे अपना प्रेम प्रकट किया। चार्लोट जैसी बुद्धिमती और मानव प्रकृति से परिचित स्त्री को यह समझने में बिलकुल

देर न लगी कि इतनी जल्दी प्रेम में पड़ने वाले युवक का प्रेम कभी स्थायी नहीं रह सकता। उसने उसे भी सीधा जवाब दे दिया।

चार्लोट का यह विचार था कि बिना कुछ सोचे-समझे किसी पुरुष के प्रेम में पड़ जाना खतरनाक है। उसने एक बार अपनी एक सखी को लिखा था : "किसी पुरुष के प्रेम में बावली सी बन जाना स्त्री के लिए बड़ा खतनाक है। जब तक किसी पुरुष के प्रेम-प्रस्ताव के बाद स्त्री की रजामंदी से विवाह न हो जाय और विवाह होने पर भी आधा वर्ष बीत न जाय तब तक किसी स्त्री को किसी पुरुष के प्रेम में नहीं पड़ना चाहिये। इसपर भी यह आवश्यक है कि प्रेम उद्दाम न हो, बल्कि शान्त और स्थिर हो। किसी पुरुष को इतना अधिक प्यार करना कि स्त्री पति की एकदम दासी ही बन जाय और उसकी कोई स्वतन्त्र इच्छा ही न रहे, हानिकारक है।"

उसकी उम्र बढ़ती जाती थी, पर उसका मनचाहा कोई पुरुष नहीं मिलता था। विवाह न होने के कारण वह बहुत दुखी थी. पर अपने आदर्श से भी च्युत नहीं होना चाहती थी। जेम्स टेलर नामक लन्दन का एक विख्यात पुस्तक प्रकाशक चार्लोट की नई लिखी हुई पुस्तक 'शर्ली' के प्रकाशन के सम्बन्ध में बातें करने के लिए उसके पास आया और उसके प्रेम में पड़ गया। उसके पिता को इस बात से प्रसन्नता हुई, पर चार्लोट उसे नहीं चाहती थी। बेचारा भला आदमी अपने प्रेम के तिरस्कार से इतना दुखी हुआ कि दुख भूलने के लिए इंग्लैंड से भारत चला आया। चर्लोट एक बार उसे विवाह करने के लिए ललचाई थी, पर फिर उसने सोचा कि उससे उसकी प्रकृति नहीं मिल सकती।

अन्त में एक ऐसे आदमी से उसका परिचय हुआ जो न देखने में सुन्दर था न विशेष विद्वान ही था। पर उसमें एक गुण था। वह यह कि

वह 'मनचला' नहीं था, और बड़ा संकोचशील तथा अत्यन्त कोमल स्वभाव का आदमी था। वह चार्लोट के पिता के अधीन 'क्युरेट' के पद पर नियुक्त होकर आया हुआ था। चार्लोट यद्यपि प्रारंभ में उसे चाहती नहीं थी, तथापि यह जान कर वह उसके साथ हेल मेल बढ़ाती जाती थीं कि वह भोला भाला प्रकृति का भला आदमी उसे कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकता। इस आदमी का नाम आर्थर निकोलस था। निकोलस उसे जी जान से चाहता था और साधारण बात पर भी वह उसके लिये मर मिटने के लिये तैयार था। वह उसे इस कारण नहीं चाहता था कि वह एक प्रसिद्ध लेखिका है, बल्कि उसके नारीत्व का आकर्षण ही उसके लिये प्रबल था। यही कारण था कि चार्लोट उससे प्रेम न करने पर भी उससे नाराज नहीं थी।

निकोलस प्रेम की ज्वाला से भीतर ही भीतर भुना जाता था, पर उसे व्यक्त करने का साहस नहीं होता था। एक दिन रात को ८ बजे के समय अवसर पाकर वह चार्लोट के कमरे में घुसा। उसका सारा शरीर काँप रहा था और चेहरा पीला पड़ा हुआ था। भर्राई हुई आवाज में उसने चार्लोट से प्रेम निवेदन किया। उसकी दशा देखकर चार्लोट को उस पर दया आ रही थी, पर वह ऐसे आकर्षण शक्ति-रहित पुरुष का प्रेम निवेदन स्वीकार कैसे करती? उसने बात टालने के लिये कह दिया कि वह अपने पिता से इस सम्बन्ध में पूछ कर जवाब देगी। वह जानती थी कि उसके पिता कभी एक साधारण 'क्युरेट' के साथ अपनी लड़की का विवाह करने के लिये राजी नहीं होंगे। उसका अनुमान ठीक ही निकला। उसके पिता ने निकोलस को इस तरह डाटना शुरू कर दिया कि चार्लोट शरम से गड़ी जाती थी।

निकोलस को इस अपमान से मार्मिक चोट पहुँची और उसने खाना पीना छोड़ दिया। चार्लोट को उसकी हालत पर कुछ कम दुख नहीं हो

रहा था, तथापि उसे दिलासा देने का साहस उसे नहीं होता था। अन्त में एक दिन निकोलस ने पद त्याग कर चले जाने का निश्चय किया। पादड़ी से विदाई लेकर वह चार्लोट से बिना कुछ कहे घर से बाहर निकल गया। चार्लोट ने उसके पदशब्दों का अनुसरण करते हुए यह अनुभव किया कि वह बहुत देर तक फाटक पर ही खड़ा था। वह तत्काल अपने कमरे से बाहर निकल कर उसके पास गई। उसने देखा कि बेचारा असफल और हताश प्रेमिक सिसक सिसक कर औरतों की तरह रो रहा है। दो एक साधारण बातों से चार्लोट ने उसे विदा किया।

निकोलस के चले जाने पर चार्लोट को अपनी भूल मालूम होने लगी। नारी का मन ऐसा रहस्यमय है कि जिस व्यक्ति के सम्बन्ध में वह समझती है कि वह उससे घृणा करती है, अक्सर उसी को वह अपने अन्तस्तल में सबसे अधिक चाहती है।

निकोलस जब चला गया तो चार्लोट के हृदय में भयंकर शून्यता छा गई और हाहाकार सा मचने लगा। उसकी हालत दिन-दिन खराब होने लगी और नित्य अपने एकांत कमरे में बैठकर वह निकोलस की स्नेह भरी बातें, उसकी प्रेमोत्तेजित अवस्था और विदाई के समय उसके रोने की घटना को याद कर खूब रोया करती। वह समझ गई कि सरल-हृदय निकोलस से सच्चा प्रेमिक उसे इस जीवन में दूसरा कोई मिल नहीं सकता उसके पिता भी अपनी भूल पर पछताने लगे। अन्त में कष्ट असहनीय होने पर एक दिन चार्लोट ने लज्जा और मान त्याग कर एक पत्र लिखकर निकोलस से वापस आने की प्रार्थना की और अपनी भूल के लिये क्षमा चाही। निकोलस तत्काल दौड़ा-दौड़ा आया और चार्लोट से मिलकर उसे प्यार से गले लगा कर पुलक हर्ष से व्याकुल हो उठा। चार्लोट का भी

वही हाल था। तीन महीने बाद दोनों का विवाह हो गया। विवाह होने ज
चार्लोट ने उन्पयास लिखना छोड़ दिया उसके जीवन की धारा ही एकद द
बदल गई और विवाहित जीवन के सच्चे प्रेममय स्वर्गीय सुख की गु ी
अनुभूति ही उसके जीवन का मूल मन्त्र बन गई।
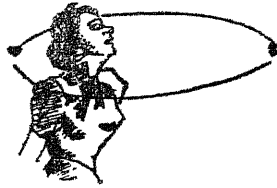
महाकवि चंडीदास की हरिजन-प्रेमिका

चंडीदास साथे धोबिन सहिते मिश्रित एकई प्राणे

"चंडीदास और धोबिनी के प्राण एक रूप में मिले हुए हैं"

राधाकृष्ण की प्रेमलीला के सम्बन्ध में बंगाल के बहुत से वैष्णव कवियों ने सुन्दर, सुललित कोमल-कान्त-पदावलियों की रचना की है। पर इन सब में चंडीदास की विशिष्टता अत्यन्त स्पष्ट रूप में प्रकट हो जाती है। चंडीदास की भाव धारा के प्रवेग से जो व्यक्ति परिचित हो गया है, समझ लेना चाहिए कि वह समस्त वंग देश के मूल प्राण की गति को जान गया है। महाप्रभु चैतन्य से लेकर रवीन्द्रनाथ और शरच्चंद्र तक जितने महापुरुष आज तक बंगाल में उत्पन्न हुए हैं, सब किसी न किसी रूप में चंडीदास की ही मर्मगाथा से प्राणोदित हुए हैं। इस प्रेमगत-प्राण महाकवि ने प्रेम के अनंत रस में अपनी सारी आत्मा को पूर्णतया निमज्जित कर दिया था। प्रेम ही उसके जीवन का मूलमंत्र था। प्रेम ही उसका जप और प्रेम ही उसका तप था। प्रेम ही उसकी साधना थी और प्रेम ही सिद्धि। इस पागल प्रेमिक ने राधाकृष्ण की जीवन-लीला के वर्णन के बहाने केवल प्रेम-देवता का ही गुणगान किया है। अपनी पदावली में उसने सर्वत्र 'पिरीति' प्रीति) की ही रट लगाई है—केवल 'पिरीति', 'पिरीति' 'पिरीति'।

पिरीति पिरीति कि रीति मूरति हृदये लागल से।
पराण छाड़िले पिरीति न छाड़े पिरीति गड़ल के?

पिरीति बलिया ए तिन आखर ना जानि आछिल कोथा।
पिरीति कण्टक हियाय फुटिल पराण पुतलि यथा।

पिरीति पिरीति पिरीति अनल द्विगुण ज्वलिया गेल ।
विषम अनल निवाइल नहे हियाय रहिल शेल ॥

—"प्रीति की मूर्ति न मालूम कैसे मेरे हृदय से आ लगी । प्राण छूटने पर भी अब यह शांति मुझे छोड़ना नहीं चाहती । इस प्रीति की रचना किसने की ? न मालूम 'पिरीति' (प्रीति) नाम के तीन अक्षर (सृष्टि के प्रारम्भ में) कहाँ छिपे थे । प्रीति का कंटक मेरे हृदय के उस मार्मिक स्थान में स्फुटित हुआ जहाँ मेरी प्राण पुतली विराज रही थी । प्रीति की आग हृदय में द्विगुण वेग से जल उठी । इसकी विषम ज्वाला किसी तरह बुझती नहीं । हृदय में प्रीति का कांटा अभी तक उसी तरह वर्तमान है ।"

प्रीति के रस में चंडीदास कैसे तन्मय हो गए थे उसका परिचय उनके सैकड़ों पदों से मिलता है । नीचे उदाहरण के तौर पर हम एक और पद उद्धृत करते हैं :

पिरीति नगरे बसति करिबो, पिरीते बांधिब घर ।
पिरीति देखिया पड़शी करिब, ताबिने सकल पर ॥

पिरीति द्वारेर कपाट करिब, पिरीते बांधिब चाल ।
पिरीति आसके सदाई थाकिब, पिरीते गोगांब काल ॥

पिरीति पालके शयन करिब, पिरीति सिथान माथे ।
पिरीति बालिसे आलिस तजिब, थाकिब पिरीति साथे ॥

पिरीति सरसे सिनान करिब, पिरीति अंजन लब ।
पिरीति धरम, पीरिति करम, पिरीते पराण दिब ।

"मैं प्रीति नगर में वास करूँगा, प्रीति की नींव ही पर घर खड़ा करूँगा । पड़ोसी से प्रीति का विचार करके सम्बन्ध स्थापित करूँगा,

क्योंकि प्रीति के बिना सभी पराये हो जाते हैं। प्रीति का ही कपाट लगाऊँगा, और प्रीति की ही छत तैयार करूँगा। प्रीति के पलंग पर प्रीति के तकिये पर सर रखूँगा। प्रीति के तकिये पर ही आलस्य त्याग करूँगा और प्रीति के साथ रहूँगा। प्रीति-सरोवर में स्नान करूँगा और आँखों में प्रीति का अंजन लगाऊँगा। प्रीति ही मेरा धर्म और प्रीति ही मेरा कर्म रहेगा। प्रीति की खातिर मैं अपने प्राणों की बलि दे दूँगा।"

इस प्रकार चातक की तरह केवल "प्रीति, प्रीति" रटकर मर मिटने वाले इसकी अद्भुत, असाधारण कवि का जीवन-चक्र भी अद्भुत और असाधारण होगा, इसमें आश्चर्य की क्या बात है। एक साधारण बरेठन (धोबन) से चंडीदास का जो आमरण प्रेम-सम्बन्ध स्थापित हो गया था उसके निगूढ़ रहस्य का मर्म न समझने के कारण समाज के निष्ठुर पेषण-यन्त्र के नीचे उन्हें किस प्रकार निपीड़ित होना पड़ा होगा, इसका अनुमान सहज में लगाया जा सकता है। पर अपनी धुन के पक्के इस महापुरुष ने अन्त तक उस प्रेम को अत्यन्त श्रद्धा और आत्मविश्वास पूर्वक निबाहा। आज हम उसी अगाध रहस्यमय प्रेम की कहानी पाठकों को सुनाना चाहते हैं।

चंडीदास का जन्म किस समय और कहाँ हुआ था, इस सम्बन्ध में अभी तक लोगों में मतभेद पाया जाता है, तथापि अधिकांश साहित्य-इतिहासज्ञों का यह मत है कि उनका जन्म चौदहवीं शती के प्रारम्भ में वीरभूम जिले के अन्तर्गत नान्नूर नामक गाँव में हुआ था। यह अनुमान किया जाता है कि चंडीदास के पिता की आर्थिक अवस्था अत्यन्त साधारण थी। और वह ग्राम-देवी 'वाशुली' के पुजारी थे। बचपन में ही चंडीदास माता-पिता से रहित होकर अनाथावस्था को प्राप्त हो गए थे। पैतृक उत्तराधिकारी के रूप में उन्हें वाशुली के मन्दिर

का पुजारी-पद प्राप्त हुआ। वह आन्तरिक भक्ति और एकान्त निष्ठा से पूर्वोक्त देवी की आराधना में अपना जीवन व्यतीत करने लगे। मन्दिर के सारे प्रबन्ध का भार उन्हीं के ऊपर था। वह अपने हाथ से देवी के लिए भोगादि पकाकर दर्शनार्थियों को प्रसाद बांटा करते और अत्यन्त प्रेमपूर्वक उन लोगों को ज्ञान और भक्ति की बातें सुनाया करते। इस बात के कई प्रमाण मिलते हैं कि चंडीदास देखने में अत्यन्त सुन्दर थे। तिस पर उनके हृदय की भावुकता जब उनकी आँखों में स्वप्नवत् विभासित होती तो दर्शकगण मन्त्रमुग्ध हो कर उनके सामने खड़े रहते और देवी-दर्शन की लालसा भूलकर उन्हीं के दर्शन से अपने को कृतार्थ समझते। विशेष करके नव युवती स्त्रियां उनके प्रति सहज में आकृष्ट होती थीं। पर चंडीदास के मन में कभी किसी युवती के प्रति कुदृष्टि डालने का विचार ही उत्पन्न नहीं हुआ। वह अपने ही भीतरी रस में तन्मय रहते थे। परन्तु उनके मन की यह स्थिरता अधिक समय तक स्थायी न रही। मनुष्य के मन के सम्बन्ध में जो लोग कोई निश्चित मत प्रकट करने का दुस्साहस करते हैं वे अपनी अज्ञानता का परिचय देते हैं। इस चिर रहस्यमय मन के भीतर न मालूम कितने युगों के संस्कार, जो बहुत युगों तक सुप्तावस्था में अचेत से पड़े रहते हैं, कब किस कारण से जागरित होकर प्रलयंकर तूफान मचा बैठते हैं, इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। वही शांत, धीर चंडीदास, जो सैकड़ों कुलवती, गुणवती, रूपवती स्त्री-भक्तों की बंकिम दृष्टि के प्रति अत्यन्त अवज्ञा का भाव दिखाते थे, कौन जानता था कि कुछ ही समय बाद एक साधारण धोबी की लड़की द्वारा प्रेमाभिभूत हो उठेंगे!

इस बरेठन का नाम रामी था। चंडीदास द्वारा रचित अनेक पदों

में उसका उल्लेख पाया जाता है। चंडीदास ने उसे पहले-पहल कहाँ देखा, इस सम्बन्ध में अन्वेषकगण किसी निश्चित मत पर नहीं पहुँचे हैं। फिर भी बहुतों का यह मत है कि चंडीदास अपने गाँव से दो-एक कोस दूर तेहाई नामक एक गाँव में एक नदी के किनारे प्राकृतिक दृश्य का उपभोग करने जाया करते थे। वहीं दोनों एक-दूसरे को देख कर प्रबल वेग से परस्पर आकर्षित हो गये थे। तब से चंडीदास नित्य उसी घाट के पास नहाने के बहाने रामी के दर्शन किया करते। बहुत दिनों तक दोनों में किसी प्रकार का मौखिक वर्तालाप नहीं हुआ, केवल आँखों की नीरव भाषा में ही बातें होती रहीं। बाद में धीरे-धीरे हेल मेल बढ़ता गया और घाट से कुछ दूर एक निर्जन स्थान में दोनों परस्परिक सुख-दुख की बातें किया करते। बंगाल के प्रायः सभी साहित्यान्वेषकों का मत है कि रामी के साथ चंडीदास का यह प्रेम अत्यन्त पवित्र और कामगन्धहीन था। इस सम्बन्ध में हम अपना निश्चित मत कुछ भी नहीं दे सकते। पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि रामी से उनका शारीरिक सम्बन्ध रहा हो चाहे न रहा हो, इस प्रेम में हृदय की विशुद्ध रसमयी भावुकता की ही प्रबलता अधिक थी, जिसके प्रमाणस्वरूप हम चंडीदास के कुछ पदों को आगे चलकर उद्धृत करेंगे। कुछ भी हो, रामी से उनकी घनिष्टता दिन-दिन बढ़ती चली गई, और अन्त में यहाँ तक नौबत आ गयी कि एक पल एक-दूसरे को देखे बिना दोनों के प्राण तड़पने लगते। इधर बाशुली मन्दिर के प्रबन्ध का भार चंडीदास के ऊपर था, इसलिए रामी से सब समय वह मिल न सकते थे। अन्त में रामी ने कपड़े धोने का काम छोड़ दिया और नान्नूर ग्राम में आकर उसने कौशल-पूर्वक बाशुली-मन्दिर के अधिकारियों को किसी तरह राजी करके मन्दिर प्रांगण में बुहारी देने का काम स्वीकार कर लिया। इस प्रकार वह सब समय चंडीदास की आँखों के सामने रहने लगी थी। उसे देख देख-कर चंडीदास

अपूर्व प्रेम में उन्नत हो होकर नित्य नये नये पद बनाकर गाते थे। ये पद यद्यपि राधा-कृष्ण सम्बन्धी होते थे, पर उनमें रामी के प्रति अन्योक्ति भरी होती थी! प्रत्यक्ष में रामी को सम्बोधित करके भी चंडीदास ने बहुत से पद रचे हैं। पर यह निश्चित है कि मन्दिर में ऐसे पद नहीं रचे गए; मन्दिर से निष्काड़ित और जाति से बहिष्कृत होने के बाद ही उन्होंने उन पदों की रचना की होगी।

मन्दिर के अधिकारियों ने जब देखा कि एक अस्पृश्य जातीय युवती से देवी के पुजारी का 'अनुचित प्रेम-सम्बन्ध' चल रहा है तब उन्होंने चंडी-दास का घोर अपमान करके उन्हें मदिर से निकाल दिया। समाज पतियों ने उन्हें अत्यन्त तिरस्कृत और लांछित करना प्रारम्भ किया। यहां तक कि षड्यंत्र रचकर उनके सगे भाई से उन्हें छुड़ा दिया। उनके भाई ने उनसे कहा कि रजकिनी (धोबन) का साथ छोड़ देने से तुम्हें फिर से समाज में ग्रहण करने की चेष्टा मैं कर सकता हूँ। पर चंडीदास तो दीवाने हो गए थे। मधुर प्रेम के अमृत रस में विभोर थे। उन्हें दीन-दुनिया से क्या काम था? समाज से बाहिष्कृत होने के बाद उन्होंने खुल्लम खुल्ला रामी से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया। चंडीदास को समाज से बाहिष्कृत करने की जो आवश्यकता समझी गयी, मन्दिर से निकालने की नौबत आ पहुँची, उससे इतना तो स्पष्ट है कि रामी से उनका प्रेम कोरे मौखिक आलाप से आगे बढ़ गया था। पर किस हद तक बढ़ा था। इस सम्बन्ध में ठीक ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। हां चंडीदास के कुछ पदों से इस बात का पता चलता है कि उनका प्रेम कामगन्धहीन था। पर यह भी सत्य है कि एक ही कवि एक ही प्रेमिका के सम्बन्ध में विभिन्न समयों में दो विभिन्न भावों का अनुभव कर सकता है। उदाहरण के लिये रवींद्रनाथ ने अपनी 'रात्रे ओ प्रभाते' शीर्षक कविता में यही भाव झलकाया है। उसमें उन्होंने दिखलाया है कि रात के समय अपनी प्रेमिका के प्रति उनके

मन में कैसा रस-विलासमय भाव वर्तमान था और प्रभात होते ही वह उनके आगे अत्यन्त पवित्र देवी के रूप में विराजमान हुई, जिसके सम्बन्ध में काम की कल्पना ही नहीं की जा सकती :

रातें प्रयसीर रूप धरि, तुमि एसेछो प्राणेश्वरी।
प्राते कखन देवीर वेशे तुमि समुखे उदिले हेसे।

आमि सम्भ्रम-भरे रयेछि दाँड़ाये दूरे अवनत शिरे।
आजि निर्मल वाय शान्त उषाय निर्जन नदी तीरे।

"हे प्राणेश्वरी। रात्रि के समय तुम प्रेयसी का रूप धारण करके मेरे पास उपस्थित हुई थीं, पर प्रभात के समय, जब कि निर्मल बयार बह रही है और निर्जन नदी से तट पर से ऊषा का स्निग्धशान्त रूप देखा जा रहा है, तुम मेरे सामने मन्द-मधुर मुस्कान से देवी के रूप में आकर प्रकट हुई हो। मैं तुम्हें देखकर श्रद्धा और सम्भ्रम से नत-मस्तक होकर दूर खड़ा हूँ।"

प्रेम का भाव प्रबल होने से प्रेमिक अपनी प्रेमिका को विश्वरूपमय देखता है। जाति से बहिष्कृत होने के बाद चंडीदास रामी को उसी रूप में देखने लगे थे। वह रामी को सम्बोधित करते हुए लिखते हैं :

तुमि रजकिनी आमार रमणी तुम हओ पितृ-मातृ।
त्रिसंध्या-याजन तोमारई भजन तुम वेदमाता गायत्री॥

तुमि वाग्वादिनी हरेर घरणी तुमि गो गलार हारा।
तुमि स्वर्ग-मर्त्य पाताल पर्वत तुमि जे नयनेर तारा॥

..."हे रजकिनी, तुम मेरी रमणी हो और मेरे माता पि ा भी तुम्हीं हो। तीनों समय संध्या करते हुए मैं केवल तुम्हारा ही भजन करता हूँ। क्योंकि वेदमाता गायत्री तुम्हीं हो। वाग्वादिनी देवी भी तुम्ही हो और तुम्हीं हर की गृहिणी हो। तुम मेरे गले का हार हो, स्वर्ग मर्त्य तुम्ही हो, पाताल पर्वत सभी तुम्ही हो और मेरी आँखों का तारा भी तुम्ही हो।"

संसार-साहित्य का जितना कुछ भी अल्प ज्ञान हमें है उसमें हम यह कहने का साहस कर सकते हैं कि प्रेमिका की ऐसी परिपूर्ण कल्पना, प्रेम की ऐसी तीव्र अनुभूति, ऐसी सरल, स्पष्ट भाषा में अब तक कोई भी कवि नहीं कर पाया है। इस विंश शताब्दी— में प्रबल सामाजिक तथा धार्मिक क्रान्ति के इस ऐतिहासिक युग में भी—हम देखते हैं कि अस्पृश्य जातीय किसी व्यक्ति से किसी प्रकार का संसर्ग रखने का साहस कितने कम लोगों में है। ऐसी हालत में जब हमें इस बात का परिचय मिलता है कि चौदहवीं शताब्दी के घोरतर कट्टरवाद के युग में एक ग्रामीण ब्राह्मण कवि ने अत्यन्त दर्प के साथ एक अस्पृश्या से अपने प्रेम सम्बन्ध की स्पष्ट घोषणा करते हुए उस पर गौरव अनुभव किया है, तो उसकी प्रतिभा को श्रद्धांजलि अर्पित किये बिना नहीं रहा जाता। प्रतिभा विद्रोहिणी होती है, वह देश काल और समाज का कोई बंधन कभी नहीं मान सकती। बरेठन से सच्चे प्रेम का सम्बन्ध स्थापित करने में कोई दोष नहीं है, इस परम सत्य का मर्म समझने के लिये हमें विंश शताब्दी के यूरोपियनों के संसर्ग और उनकी शिक्षा की आवश्यकता नहीं है—मध्य युग का एक तथा-कथित 'असंस्कृत' भारतीय कवि भी विशुद्ध आत्मा के निर्मल प्रकाश से आलोकित होकर अपने भावुक हृदय में इस तत्त्व को हृदयंगम करने में समर्थ हुआ था।

इस प्रेम-प्राण कवि को लोकनिन्दा का डंक इष्टमार्ग से विचलित न कर सका, यह बात पहले ही कही जा चुकी है। रामी को सम्बोधित करते हुए चंडीदास ने लिखा है :

कलंकी बलिया डाके सब लोके ताहाते नाहिक दुःख।
तोमार लागिया कलंकेर हार गलाय परिते सुख॥

—"सब लोग मुझे कलंकी कह कर पुकारते हैं, पर मैं उनकी इस कटूक्ति से दुःखित नहीं हूँ। तुम्हारे कारण कलंक का हार भी गले में धारण करने में सुख का अनुभव होता है।" ईसा के काँटों के ताज की तरह ही यह कलंक का हार महा-महिम है।

चंडीदास की अलौकिक प्रेरणा पाकर स्वयं रामी भी कविता करने लगी थी। वह भी पद रचना करके चंडीदास के प्रति अपने उद्दाम प्रेम का का उद्वेलित प्रवाह व्यक्त किया करती थी। उसके रचित अधिकांश पद यद्यपि लुप्त हो गए हैं, तथापि कुछ पद अभी तक मिलते हैं। उसका एक पद इस प्रकार है :

तुमि दिवाभागे निशा अनुरागे भ्रमो सदा वने वने।
ताहे तब सुख ना देखिया दुःख पाई बहु क्षणे क्षणे॥

त्रुटि सम काल मानि सुजंजाल युगतुल्य हय ज्ञान।
तोमार विरहे मन स्थिर नहे व्याकुलित हय प्राण॥

कुटिल कुन्तल कत सुनिर्मल श्रीमुखमंडल शोभा।
हेरि हय मने ए दुई नयने निमेष दियाछे केबा॥

चाहे सः ज्ञण हय दरशन निवारण सेह करे।
ओहे प्राणधिक,, कि कब अधिक दोष दिये विधातारे॥

तुमि जे आमार आमि हे तोमार सुहृत् के आछे आर ।
खेदे रामी कय चंडीदास विना जगत् देखि आँधार ॥

—"तुम दिन-रात वन वन में फिरते रहते हो । इस कारण तुम्हारा मुख न देख सकने के कारण क्षण-क्षण में मैं बहुत दुखः पाता हूँ । क्षण मात्र युग के समान जान पड़ता है । तुम्हारे विरह से मेरा मन स्थिर नहीं है और प्राण व्याकुल हैं । तुम्हारे घुँघराले बाल और निर्मल मुख-मंडल की शोभा देखकर इस बात के लिये दुःख होता है कि मेरी इन आँखों में किसने पलकों का निर्माण कर दिया । सब समय निर्निमेष नयन से तुम्हारा मुख देखते रहने की इच्छा होती है, पर आँखों के पलक मारने के कारण बीच-बीच में दर्शन से वंचित होना पड़ता है । हे प्राणाधिक, प्रियतम ! मैं अधिक क्या कहूँ । विधाता को दोष देकर क्या करूँ । तुम मेरे हो, मैं तुम्हारी हूँ । और तीसरा कोई हम दोनों का सुहृद नहीं है । रामी दुःखी होकर कहती है कि चंडीदास के बिना मैं सारा संसार अन्धकारमय देखती हूँ ।"

कहा जाता है कि चंडीदास और रामी दोनों 'सहज' मतावलम्बी (सहजिया संप्रदाय से संबंधित) होकर परकीया धर्म में दीक्षित हो गए थे । रामी अपने को राधा मान कर चंडीदास को कृष्ण के रूप में भजती थी और चंडीदास अपने को कृष्ण मानकर रामी से राधा के रूप में प्रेम का सम्बन्ध रखते थे । चंडीदास 'सहज' मतावलम्बी थे इस बात के बहुत से प्रमाण मिलते हैं । यह मत बौद्ध तंत्रों के प्रभाव से बंगाल में किसी समय बड़े जोरों से फैल गया था और और इस समय भी बंगाल के वैष्णवों का 'सहजिया' सम्प्रदाय बहुत कुछ अंश में उसी मत को मानता चला आता है । इस 'सहज' मत ने धीरे धीरे विकृत रूप धारण करके बंगाल में व्यभिचार की उद्दम तरंग प्रवाहित कर दी थी ।

महाकवि चंडीदास की हरिजन प्रेमिका

महात्मा बुद्ध के कठिन नीति-मूलक धर्म की शुष्कता से जब बौद्ध-सम्प्रदाय उकता गया तो उसमें धीरे-धीरे अत्यधिक नीतिनिष्ठा की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप नाना रसमय तत्वों का विकार प्रवेश करने लगा। हिन्दू-धर्म के पुनुरुत्थान का जो आन्दोलन चल रहा था उसके संसर्ग में आकर वे लोग देवो-देवताओं को भी मानने लगे। बौद्ध धर्म की विभिन्न शाखाएं प्रस्फुटित होती जाती थीं। इन्हीं शाखाओं में से एक सहजिया-सम्प्रदाय भी था। चंडीदास जिस बाशुली देवी के मंदिर के पुजारी थे वह सहजिया-सम्प्रदाय की देवी नित्या षोड़शी की सोलह सहचरियों में अन्यतम मानी जाती थी। यह बाशुली मंगल चंडी के नाम से भी पुकारी जाती थी। आज दिन चंडी की पूजा बंगाल में तथा भारत के अन्यान्य प्रदेशों में बड़े समारोह से होती है। यह मूलतः बौद्धों की ही देवी थीं। राजा धर्मपाल के समय बौद्धों में 'महासुखवाद' नामक एक मत प्रवर्तित हुआ था। सहजिया पंथी इसी मत को मानते थे। उनका विश्वास था कि आनंद-प्राप्ति ही निर्वाण का उदेश्य है, इसलिए शारीरिक सुख-साधन ही निर्वाण-मार्ग है। आठवीं शताब्दी के लुइपाद ने इस धर्म का प्रचार किया था। उसका मत था कि स्त्री सम्भोग से जो सुख प्राप्त होता है वही सब सुखों में श्रेष्ठ है, अतएव जात-पाँत का कोई ख्याल न करके स्त्रियों के साथ यथेष्ट विहरण करना चाहिये। बाद में हिन्दू-धर्म में जिस तांत्रिक मत की प्रतिष्ठा हुई उसे उसी सहजिया धर्म से प्रेरणा मिली थी। इस 'सहज' मत के प्रचार से बौद्ध भिक्षु जिस घोर अनाचार के घृणित पंक में निमज्जित हो गये थे, उसका वर्णन करने में हम अपने को असमर्थ समझते हैं।

पर चंडीदास ने इस देहात्मवादी मत को अपनी अन्तर प्रतिभा की प्रेरणा से अपने निजी सांचे में ढाल कर उसे एक नया ही रूप

दिया था, जो अध्यात्म वादी और पवित्र होने के साथ ही अनंत रसमय था। बाद में महाप्रभु चैतन्य को भी चंडीदास के इस हृदयहारी अभिनव प्रेम-मार्ग से प्रेरणा मिली थी।

चंडीदास ने लिखा है कि वाशुली के आदेश से ही उन्होंने परकीया धर्म का आश्रय लेकर रजकिनी रामी के साथ प्रीति का सम्बन्ध स्थापित किया, अर्थात् रामी को राधा और अपने को कृष्ण मान कर वह प्रेम की अनन्त तरंग में भासमान होने लगे:

रति परकीया जाहारे कहिया सेइ से आरोप सार।
भजन तोमारि रजक झियारि रामिणी नाम जाहार ॥

"परकीया रति का आश्रय ग्रहण करके तुम्हें रामिणी नाम की बरेठन का भजन करना होगा।"

यह पहले ही कहा जा चुका है रामी (या रामिणी) के प्रति चंडीदास का प्रेम-सम्बन्ध देहगत था या नहीं, यह अनिश्चित है। 'सहज' मतावलम्बी देहात्मवादी थे, और चंडीदास ने स्वीकार किया था कि उन्होंने उसी मत का अनुसरण किया है। इतना तो निश्चित है कि चंडीदास ने इन्द्रिय-सम्बन्धी प्रेम को अत्यन्त उन्नत रूप दे दिया था। पर उसका यथार्थ रूप क्या था, इस प्रश्न की मीमांसा अत्यन्त जटिल है। कहीं कहीं पर चंडीदास कहते हैं कि उसमें काम-गंध नहीं है:

एक निवेदन करि पुनः पुनः शुनो रजकिनी रामी।
युगल चरण शीतल देखिया शरण लइलाम आमि ॥

रजकिनी रूप किशोरी स्वरूप काम-गंध नाहि ताय।
ना देखिले मन करे उचाटन देखिले पराण जुड़ाय ॥

"हे रजकिनी रामी ! मैं तुमसे बार-बार निवेदन करता हूँ कि तुम्हारे चरण-युगल को शीतल समझ कर मैने उनकी शरण पकड़ी है ! तुम्हारा रूप किशोरी-स्वरूप है, उसमें काम-गंध नहीं है। उसे न देखने से प्राण अस्थिर रहते हैं और देखने से शान्ति मिलती है।"

परन्तु इसके विपरीत एक दूसरे पद में वह लिखते हैं :—

कहे रजकिनी रामी शुनो चंडीदास तुमि
निश्चय मरम करि जाने।
बाशुली कहिछे जाहा सत्य करि मानो ताहा
वस्तु आछे देह वर्तमाने ॥
आमि तो आश्रय हई विषय तोमारे कई
रमणकालेते गुरु तुमि।
आमार स्वभाव मन तोमार रति ध्यान
तेई से तोमाय गुरु मानि ॥
साधन शृंगार रस इहाते हइवे वश———इत्यादि

———"रजकिनी रामी कहती है : चंडीदास, सुनो, मैं मर्म की बात कहती हूँ। बाशुली का कथन है कि शरीर की उपस्थिति में ही वास्तविक सत्य वर्तमान रहता है। मैं आश्रय हूँ और तुम विषय। रमणकाल में तुम्हीं मेरे गुरु हो। मेरा स्वभाव और मन तुम्हारी रति के ध्यान में निमग्न रहेंगे। शृंगार-रस ही इस धर्म का साधन रहेगा।" इससे सन्देह होता है कि शरीर सम्बन्धी शृंगार रस भी संभवत: किसी हद तक इस प्रेम का साधन था। इस रस और राग का रूप कैसा था, इस सम्बन्ध में चंडीदास लिखते हैं :

रागेर उदय बसति कोथा ? मदन, मादन शोषण यथा ॥
मदन बइसे वाम नयने । मादन बइसे दक्षिण कोणे ॥
शोषण वाणेते उपाने चाई । मोहन कुचेते धरये भाई ॥
स्तम्भन श्रृंगारे सदाइ स्थिति । चंडीदास कह रसेर रीति ॥

"राग, (प्रेम) का उदय और वास कहाँ है ? जहाँ मदन, मादन और शोषण निवास करते हैं । मदन का निवास बाँई आँख में है और मादन का दाहिनी में । शोषण वाण उपान में है और मोहन वाण कुच में अवस्थित है । इस प्रकार स्तम्भन श्रृंगार में सदा स्थिति रहती है । चंडीदास कहते हैं कि रसकी रीति यही है ।" इस उत्कट श्रृंगार-रसात्मक रति को अतीन्द्रिय नहीं कहा जा सकता । हाँ, यह सम्भव हो सकता है कि प्रेम के क्रमिक विकास को अतीन्द्रिय रूप देना अनुभव चंडीदास का लक्ष्य रहा हो । चंडीदास के अनेक पदों में ऐसे शब्द आए हैं जिनसे इन्द्रिय सम्बन्धी प्रेम का अनुभव होता है, जैसे—

(१) अधरे अधर मिसाल करिया आसादान करि निवे ।

(२) रागेर जनम अंग हइते उठे ।

(३) दुहुं कोले दुहुं कांदे विच्छेद भाविया ।

इत्यादि ।

—"अधर से अधर मिलाकर उसका आस्वादन कर लेना," "प्रेम का जन्म शरीर से होता है," "दोनों परस्पर आलिंगन-पूर्वक विच्छेद की भावना से रो रहे हैं ।"

इस प्रकार के पदों से यह पकट होता है कि संभवतः चंडीदास के प्रेम में शरीर का संबन्ध था । तथापि उन्होंने उसी शारीरिक प्रेम को उन्मादिनी भावुकता के रस से ऐसा उन्नत रूप दे दिया था कि वह दूसरे रूप में काम

गंध से रहित था। यह बात पाठकों को अवश्य ही पहेली की तरह आत्म-विरोधी मालूम पड़ेगी। पर यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह आसानी से समझ में आ सकती है। संसार के प्रायः सभी श्रेष्ठ कवियों की जीवनियों से पता चलता है कि उन्होंने अपने जीवन में किसी न किसी स्त्री के प्रति उन्मादक प्रेम का अनुभव अवश्य किया है। और उसी प्रेम की तीव्र अनुभूति से प्रेरित होकर वे अमर रचनाएं लिखकर छोड़ गये हैं। अगर उनका प्रेम केवल काम-जनित और इन्द्रिय सम्बन्धी होता तो उनकी आत्माओं से उसके सम्बन्ध में अपूर्व रसपूर्ण मार्मिक उद्गार कदापि व्यक्त न होते। साथ ही यह भी कहना मूर्खता का परिचायक होगा कि उनका प्रेम एकदम अतीन्द्रिय था। चंडीदास के संबन्ध में भी किसी अंश तक यही बात कही जा सकती है। पर चंडीदास के प्रेम में यह विशेषता थी कि इन्द्रिय-सम्बन्ध रखते हुए भी वह अन्यान्य कवियों की अपेक्षा अतीन्द्रियता की ओर अधिक झुका हुआ था। हम पहले ही बता चुके हैं कि हम अनुमान से ऐसा लिख रहे हैं। यह भी सम्भव हो सकता है कि चंडीदास का यह प्रेम इन्द्रिय सम्बन्ध से एकदम वर्जित रहकर केवल आध्यात्मिक तथा उन्नति मानसिक रति में ही सीमित रहा है। क्योंकि वैष्णव कवियों ने राग-रति और काम-रति में विशेष अन्तर रक्खा है। बाह्य लक्षण एक होने पर भी दोनों में विशेष विभिन्नता बतलाई गई है।

समाज ने चंडीदास को बहिष्कृत कर दिया, इससे उनको दुख नहीं हुआ पर उनके कारण उनके कुटुम्बी जनों के हाथ का खान पान भी छूट गया। उनका भाई (जिसे उन्होंने नकुल के नाम से उल्लिखित किया है) रोकर उनके पैरों पर गिड़गिड़ा कर पार्थना करने लगा कि तुम धोबिन का संग त्याग दो नहीं तो सारा कुल कलंकित हो रहा है। इस पर...

शुनि चंडीदास छाड़िया निश्वास
भिजिया नयन जले।

धोबिनी सहिते आमि जेन ताथे
उद्धार हइबो कुले ।

—"चंडीदास नकुल की प्रार्थना सुनकर लम्बी साँस लेकर अश्रुपूर्ण स्वर में बोले कि मैं धोबन को साथ लेकर ही कुल में गृहीत होना चाहता हूँ—अकेले प्रवेश करना नहीं चाहता ।"

पर नकुल न माना । वह समाजपतियों के आदेश से चंडीदास के प्रायश्चित्त के लिए उनकी इच्छा के विरुद्ध तैयारियाँ करने लगा । नाना प्रकार के पकवान तैयार किए और समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को निमन्त्रण दिया गया । इधर चंडीदास "पिरीति–पीरीति" की रट लगाते रहे :

पिरीति ज्ञाति पिरीति जाति, पिरीति कुटुम्ब हय ।
पिरीति स्वाभाव पिरीति विभव, पिरीति एमन वय ।।

रामी को बड़ा डर था कि नकुल चंडीदास का अत्यन्त प्रेमपात्र होने से कहीं सचमुच उसे उनके हाथ से छुड़ा कर उन्हें समाज में न ले ले । इसलिए एक दिन नदी के किनारे नकुल के साथ स्नान के समय भेंट होने पर उसने हाथ जोड़ कर अश्रुवर्षण करते हुए कहा : "हे ठाकुर नकुल ! तुम यह क्या आयोजन कर रहे हो !"

तोमार चरिते जगत पवित्र
तोमार साधु जे वाद् ।
तुमि से सकल जाते पाते तोलो
नीच प्रेमे उनमाद ।।
वर्णाश्रम छार पिरीति के दृढ़
जाहार पिरीति हय—इत्यादि

"तुम्हारे चरित्र से जगत पवित्र है, तुम साधुवादी पुरूष हो, तिस पर भी तुम जात पात का विचार करते हो। प्रेम के आगे वर्णाश्रम का बन्धन कोई चीज नहीं है।" नकुल के सामने तो रामी ने इस प्रकार तेज पूर्ण दृढ़ता से चंडीदास के प्रायश्चित का विरोध किया, पर घर आकर रो-रो कर व्याकुल हो उठी। इसके बाद मौलसिरी के पेड़ के नीचे आकर दिन रात नितान्त असहायावस्था में आँसू गिराती रही। उसे इस दशा में देख-कर नकुल को भी रुलाई आ गई। धोबन नें बार-बार आहें भरकर आवेश पूर्वक नकुल कोंसमझाया और कहा: "चंडीदास साथे धोबिनी सहिते मिश्रि एकई प्राणे" अर्थात्—"चंडीदास के प्राणों के साथ मेरे प्राण एक ही रूप में मिश्रित हैं, उन्हे अलग करने की चेष्टा करने से अनर्थ हो जायगा।" नकुल यद्यपि धोबन की सच्ची लगन से पिघल गया, पर वह लाचार था, समाज का घोर अत्याचार सहन करने में वह असमर्थ था।

अन्त को एक दिन सामाजिक भोज का विराट आयोजन हुआ। सब समाजपति निमन्त्रित थे। नकुल के हठ से वाध्य होकर चंडीदास वाह्य प्रायश्चित के बाद ब्राह्मणों को अपने हाथ से भोजन परोसने लगे। यद्यपि वह 'मन-ही-मन "रामी-रामी रामी" "पिरीति पिरीति पिरीति" रट रहे थे। वह भोजन परोस ही रहे थे कि रामी यह समाचार पाकर पागलों की तरह वहाँ दौड़ी आई और चंडीदास के समाने आकर खड़ी हो गई उसका अश्रुसिक्त सुन्दर मुख मण्डल देखते ही चंडीदास ने प्रेम-गद्‌गद् होकर परोसना छोड़कर दंडधारी सामाजिक नेताओं की भरी सभा में उसे गले से लगा लिया। दोनों की प्रेम-गद्‌गद् आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे:

> एमन पिरीति कभु देखि नाई शुनि।
> पराणे पराण बाँधा आपना आपनि॥

दुहुँ कोडे दुहुँ कांदे विच्छेद भाविया ।
तिल आध ना देखिले जाय जे मरिया ॥

जल बिनु मीन जेन कवहूँ ना जीये ।
मानुषे एमन प्रेम कोथा ना शुनिये ॥

कुसुमे मधुप कहि से नहीं तूल ।
ना आइले भ्रमर आपनि ना जाय फूल ॥
कि छार चकोर-चाँद दुँहु सम नहे ।
त्रिभुवने हेन नाई चंडीदास कहे ॥

"ऐसी प्रीत न कभी किसी ने देखी, न सुनी । अपने आप दोनों के प्राण परस्पर जड़ित हो गए हैं । दोनों परस्पर आलिंगन-पूर्वक विच्छेद की भावना से रोते हैं । यदि एक पल भी एक दूसरे को नहीं देखता तो प्राण खो बैठता है, जैसे जल के बिना मछली नहीं जी सकती । ऐसे प्रेम का मर्म किसी मनुष्य ने पहले कहीं नहीं सुना था । कुसुम और भौंरे की तुलना इन दोनों के प्रेम से नहीं दी जा सकती, क्योंकि भ्रमर के न आने से फूल स्वयं उड़ कर उसके पास कभी नहीं जाता । पर यहाँ तो यह बात नहीं है (स्वयं रामी विरह यन्त्रणा से व्याकुल होकर चंडीदास के पास आकर दौड़ती है) । चकोर और चन्द्र की तुलना भी उनके लिए अत्यन्त तुच्छ है । चंडीदास कहते हैं कि त्रिभुवन में कहीं ऐसा (प्राण-स्पर्शी सुदृढ़ स्थायी प्रेम) वर्तमान नहीं है ।

सच्चे प्रेम की जय एक न एक दिन होकर ही रहती है । समाज के अधिष्ठताओं ने जब देखा कि नाना रूपों से तिरस्कृत, लांछित और निपीड़ित होने पर भी दोनों अपने प्रेम में अटल हैं, तब वे भी उस अजर, अमर प्रेम की महत्ता को स्वीकार करने लगे और अस्पृश्या धोबन भी अन्त को स्पृश्या मानी गई और समाज में ग्रहण की गयी :

धोबिनी दांड़ाया द्विजपाने चाया पिरीति पिरीति भजे।
द्विजगण-डाके व्यंजन आनिते धोबिनी तखन धाय ॥

"धोवन भोजन करने वाले ब्राह्मणों की ओर देखकर के 'प्रीति प्रीति' भज रही है। ब्राह्मणों ने उसे खाना परोसने के लिये कहा और वह प्रेमपूर्वक दौड़ती हुई गयी।"

हरिजनों के उद्धार के विरुद्ध विंश शताब्दी के कट्टरपंथी कैसा विद्रोह खड़ा कर रहे हैं, यह सभी को विदित है, पर चंडीदास की महान प्रेमात्मा की महिमा ने चौदहवीं शताब्दी के उत्कट विद्रोहियों को अपने वश में करके एक अस्पृश्या को भी ब्राह्मणों के साथ समान अधिकार पर प्रतिष्ठित करने के लिये प्रेरित कर दिया। सच्चे प्रेम और सच्चे लगन की कसौटी यहीं पर है!

चंडीदास अपने युग के महान् क्रान्तिकारी और रिफार्मर थे। उनका धर्म मनुष्य धर्म था। बाशुली देवी के पुजारी होने पर भी वह देवी-देवताओं को केवल रूपक के रूप में मानते थे। राधा-कृष्ण उनके लिए देवी देवता नहीं थे। उन्हें वह प्रेम-देवता के द्विविध स्वरूप मानते थे। उनके लिये उनकी बरेठन राधा से किसी अंश में कुछ कम नहीं थी—बल्कि वही उनकी असली राधा थी। राधा और कृष्ण के नाम पर उन्होंने जितने भी पद रचे हैं वे सब रामी के प्रति अपने प्रेम के विभिन्न भावों को व्यक्त करने के लिये अन्योक्ति के तौर पर लिखे गए हैं।

अंत को मानव धर्म के सम्बन्ध में चंडीदास की महावाणी को उद्धृत करके हम इस प्रेमामृत कथा को समाप्त करते हैं:

शुनो रे मानुष भाई !
सबार उपरे मानुष सत्य
ताहार उपरे नाई !

"हे मनुष्य भाई, सुनो। सब के ऊपर मनुष्य सत्य है, उसके पर कोई नहीं है।"

नरक-निर्वासी उपन्यासकार डास्टाएव्सकी का प्रेम-जीवन

विश्वविख्यात रूसी उपन्यासकार डास्टाएव्सकी के जीवन का अधिकांश भाग घोर कष्टमय नरक के सुदीर्घ निर्वासन में बीता। उसके 'निम्न लोक से लिखे गये पत्र' से उसकी नरक यातनाओं की वास्तविकता का परिचय मिल सकता है। दीर्घकाल तक जीवन के आनन्द से अपरिचित यह लेखक संसार के स्नेह से भी एकदम वंचित रहा। इस विद्रोही आत्मा के आत्म-सम्मान ने उसे उस समय के आत्म संतुष्ट बूर्जवा समाज से हेल मेल बढ़ाने से निषेध किया। पेट की ज्वाला उसे निरंतर सताती रही। और साथ ही प्रेम की अतृप्त पिपासा उसके जी को जलाती रही। इस द्विविध ताप के पीड़न से मुक्ति पाने के लिये वह छटपटा ही रहा था कि जार के विरुद्ध परिचालित एक गुप्त राजनीतिक मामले में भाग लेने के कारण अन्य व्यक्तियों के साथ उस पर फाँसी की दंडाज्ञा जारी की गई। फाँसी की तैयारी हो ही रही थी कि जार के खास हुक्मनामे के अनुसार अंतिम क्षण में फाँसी फी आज्ञा रद्द होकर उसे चार वर्ष तक साइबेरिया की बर्फीली उजाड़ भूमि में निर्वासन की सजा मिली।

चार वर्ष तक रौरव नरक में सड़ने के बाद जब मृतप्राण और शुष्क शरीर लेकर वह लौटा तब वह संसार में निपट अकेला था। उसका एक भाई अवश्य था जो उसके प्रति सहानुभूतिशील था, पर उसकी भी आर्थिक

स्थिति अच्छी नहीं थी। इधर प्रेम का भूखा होने के कारण वह एक ऐसी नारी के फेर में पड़ गया, जिसने अपने तात्कालिक स्वार्थ की सिद्धि के लिये उसके साथ विवाह किया और अन्त में उसे धोखा देने के बाद वह मर भी गई। डास्टाएव्सकी और उसके भाई ने मिलकर एक पत्र निकाला। पत्र खूब चला, पर अचानक उसके भाई की मृत्यु हो गई। फल यह हुआ कि वह कई हजार रुपये के फेर में पड़ गया। यद्यपि इन सब रुपयों का देनदार उसका भाई ही था तथापि उसने सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। उसकी रचनाओं से उसकी ख्याति सारे रूस में फैल चुकी थी, तथापि उनकी आर्थिक स्थति नहीं सुधर पाती थी। इधर कर्जदार लोग उसे जेल में डालने की धमकी दे रहे थे। अन्त में निरुपाय होकर उसने अपनी सब रचनाओं का कापीराइट एक प्रकाशक के हाथ ६००० रु० को बेच दिया। यह सब रुपया कर्जा चुकाने में चला गया, पर इस पर भी उसका पिंड नहीं छूटा। प्रकाशक की एक और शर्त थी। वह यह कि एक महीने के भीतर डास्टाएव्सकी को एक नई किताब लिख कर उसका भी कापीराइट उसे देना होगा, नहीं तो उसकी सब किताबों का 'कापीराइट' भी छिन जायगा और रुपये भी नहीं मिलेंगे। इतने कम समय में एक किताब तैयार करने के लिए उसे एक शार्टहेन्ड जानने वाले व्यक्ति की आवश्यकता थी। आलिखिन नाम का उसका एक मित्र शार्टहेन्ड का अध्यापक था। उसने एक लड़की को उसके पास भेज दिया :

लड़की का नाम अन्ना ओगोरेवना था। जब आलिखिन ने पूछा कि क्या वह विख्यात लेखक डास्टाएव्सकी के यहाँ काम करना चाहेगी तो उसे अपने इतने बड़े सौभाग्य पर विश्वास ही न हुआ। उसने डास्टाएव्सकी के उपन्यास पढ़ रक्खे थे और उसकी 'मृतकगृहके संस्मरण' नामक पुस्तक पढ़ कर वह एकांत में खूब रोई थी। उसने सहर्ष इस काम को

स्वीकार कर लिया। वह गरीब घराने की लड़की थी। इसलिये यह कम खुशी की बात उसके लिये नहीं थी कि उसे कुछ काम मिला, पर सबसे अधिक प्रसन्नता की बात यह थी कि डास्टाएव्सकी जैसे श्रेष्ठ लेखक के नीचे उसे काम करना होगा।

दूसरे दिन वह आलिखिन का पत्र लेकर डास्टाएव्सकी के पास गई। वह घबराई हुई थी। तब तक उसे मालूम न था कि लेखक नाम का जीव कैसा होता है। जिस बड़े मकान में डास्टाएव्सकी रहता था उसके अधिकांश निवासी मजदूर या छोटेमोटे दुकानदार थे। उस समय डास्टाएव्सकी का प्रसिद्ध उपन्यास 'अपराध' और दंड, धारावाहिक रूप से एक मासिक पत्र में निकल रहा था, जिसे अन्ना बड़े शौक से पढ़ा करती थी। उसमें नायक के निवासगृह का जैसा वर्णन था इस मकान को अन्ना ने ठीक वैसा ही पाया।

डास्टाएव्सकी को जब अन्ना ने पहले पहल देखा तो उसको रोग शोक की म्लान छाया से मुरझाया देखकर उसने पहले सोचा कि वह बुड्ढा हो चला है। पर डास्टाएव्सकी के मुख के भावों में इतनी जल्दी परिवर्तन होता था कि कुछ ही देर बाद वह जवान मालूम पड़ने लगता था। डास्टाएव्सकी ने बड़ी गंभीरता से उसके साथ बातें कीं। उसे चाय पिलाने के बाद काम के सम्बंध में रात को फिर आकर शार्टहैन्ड की योग्यता की परीक्षा देने के लिये कहा। प्रथम मिलन में डास्टाएव्सकी की रूखी बातें और रूखा स्वभाव देखकर अन्ना बहुत निराश हुई और उसने अपने पीड़ित हृदय के रक्त से लिखने वाले इस लेखक में कोई आकर्षण नहीं पाया।

रात को जब फिर वह उदासीनतापूर्वक उसके पास गई तो डास्टाएव्सकी ने इस बार बड़ी सहृदयता के साथ इस ढंग से बातें की

जैसे वह अन्ना को बरसों से जानता हो। अन्ना घबराई हुई थी, पर उस गम्भीर-प्रकृति लेखक का स्वभाव बदला हुआ देख कर उसे भी साहस हुआ और उसने उसके प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर दिया। उस युग में भी नवशिक्षिता रूसी लड़कियाँ आवश्यकता से अधिक ढीठ और 'बेतकल्लुफ' होती थीं, इसलिये डास्टाएव्सकी उनसे चिढ़ता था, पर अन्ना के स्वभाव में एक ऐसी गंभीरता और सहृदयता उसने पाई जो उसे बहुत पसन्द आई।

दूसरे दिन अन्ना फिर जब डास्टाएव्सकी के यहाँ गई तो उसने अपने उपन्यास का पहला परिच्छेद उसे 'डिक्टेट' कराना शुरू कर दिया। कुछ देर तक 'डिक्टेट' कराने के बाद वह ठहर गया। आगे कुछ बताने के लिये उसका दिमाग काम ही नहीं कर रहा था। वह किसी कारण से अत्यंत विचलित हो उठा था। उसने अन्ना से कहा: "जितना लिखा गया है उसे नकल करके कल ले आना। देखने के बाद मैं फिर आगे बढ़ूँगा।"

तब से अन्ना उसके यहाँ नित्य जाती और कुछ देर गपशप करने के बाद डास्टाएव्सकी उसे उपन्यास के परिच्छेद पर परिच्छेद 'डिक्टेट' कराते जाता और अन्ना दूसरे दिन उसे प्रचलित अक्षरों में शुद्धतापूर्वक लिख कर उसके पास ले आती। डास्टाएव्सकी के साथ उसकी घनिष्ठता बढ़ जाने से उसने इस चिर-दुःखी आदमी के जीवन का सारा इतिहास मालूम कर लिया। यद्यपि वह अभी लड़की ही थी और अभी-अभी उसने स्कूल छोड़ा था, तथापि निम्न मध्यवर्ग के निर्धन परिवार में उत्पन्न होने के कारण उसे इसी उम्र में कड़े अनुभव हो चुके थे और डास्टाएव्सकी के जीवन की दुःख-गाथा सुन कर उसके प्रति उसके मन में समवेदना का स्रोत उमड़ चला। विशेष करके जब अन्ना ने देखा कि वह अभागा

लेखक संसार में अकेला है और उसके प्रति स्नेह तथा सहानिभूति प्रकट करने वाला एक भी प्राणी नहीं है तो उसके कोमल हृदय में हाहाकार सा मचने लगा। दो सहृदय और दुखी प्राणियों का पारस्परिक आकर्षण कितना प्रबल होता है यह बात अनुभवियों से छिपी नहीं है। इस आकर्षण के लिये धन और यौवन की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। सहानुभूति और सहृदयता की चुम्बक शक्ति ही इसके लिये पर्याप्त होती है।

काम से रात को घर लौटने पर अन्ना मन ही मन सोचती : "यदि मुझे इस भाग्यहीन की सेवा का सुयोग मिलता तो मैं जी-जान से उसे इस तरह रखने की चेष्टा करती कि वह अपने पिछले दुखों को भूल जाता और नये सिरे से नया जीवन व्यतीत करता। पर ऐसा कैसे हो सकता है! मुझे ऐसा सुयोग मिलना क्या सम्भव है?" और रह रह कर उसके मन में एक टीस सी उठती।

अन्ना की सहायता से डास्टाएव्सकी ने शर्त में दी गयी अंतिम तिथि से एक महीना पहले ही अपनी रचना समाप्त कर डाली। ज्यों ज्यों रचना समाप्ति की ओर बढ़ती जाती थी त्यों त्यों अन्ना का हृदय इस भावना से विषादमग्न होता जाता था कि एक गहन अनुभव-प्राप्त लेखक के मुख से मानव जीवन की सुखदुःखमयी अनुभूतियों की भावोद्दीपक बातें अब वह नहीं सुन पायेगी, क्योंकि काम समाप्त होने पर फिर वह डास्टाएव्सकी के पास नहीं जा सकेगी।

काम समाप्त होने पर डास्टाएव्सकी ने अन्ना को अपने अन्य साहित्यिक बन्धुओं के साथ एक भोज के लिये निमंत्रित किया। पर अन्ना को बड़े-बड़े लेखकों के साथ भोज में सम्मिलित होने में बड़ा संकोच मालूम होने लगा और वह न गई।

३० अक्टूबर को वह डास्टाएव्सकी द्वारा 'डिक्टेट' की गई अन्तिम कापी की नकल लेकर गई। उस दिन डास्टाएव्सकी की वर्षगांठ थी। यह बात अन्ना को मालूम थी, इसलिये वह एक रंगीन रेशमी गाउन पहन कर उसके पास गई। आज वह सज-सँवर कर आई हुई थी। डास्टाएव्सकी उसके स्वभाव पर पहले से ही मुग्ध था। आज उसके रूप में भी उसने आकर्षण पाया। उसने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सलज्ज मुस्कान से अन्ना के साथ हँसी खुशी की बातें कीं और उसके पारिश्रमिक के रूप में ५० रूबल (उस जमाने के हिसाब से प्रायः १०० रु०) देते हुए कहा: "अब तुम मुझे अपने यहाँ आने का निमन्त्रण कब दोगी?" अन्ना इस बात की कल्पना से पहले ही से घबराई सी थी। वह एक अँधेरी गली के भीतर एक साधारण से मकान में अपनी माँ के साथ रहती थी। वहाँ रूस का इतना बड़ा ख्यातनामा लेखक जायगा, यह कल्पना उसके लिये बड़ी भयानक थी। वह टालने लगी। डास्टाएव्सकी ने निराश होकर कहा: "देखो ग्रेगोरेवना, क्या सचमुच मुझसे कोई कसूर हुआ है जो तुम मुझसे नाराज हो गईं?"

लाचार उसे निमंत्रण देना पड़ा। इसके बाद दो बार डास्टाएव्सकी उसके घर गया। दूसरी बार जाने पर अन्ना को फिर अपने यहाँ आने का निमंत्रण देता गया।

जब निश्चित दिन को अन्ना उसके यहाँ गई तो उसने डास्टाएव्सकी को अत्यन्त विचलित पाया। डास्टाएव्सकी ने कहा: "आखिर तुम आ ही गईं!" मैं सोच रहा था कि शायद तुम मुझे भूल गईं।

अन्ना ने कहा: "आज आपको बहुत प्रसन्न देख कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ है। क्या मैं जान सकती हूँ कि इस प्रसन्नता का कारण क्या है?"

डास्टाएव्सकी ने कहा : "कल रात मैंने स्वप्न में एक चमकता हुआ हीरा पाया है।" इसके बाद कुछ सोच कर उसने कहा : "मैं एक नयी प्रेम कहानी का प्लाट सोच रहा हूँ।" अन्ना के पूछने पर कि वह प्लाट क्या है, डास्टाएव्सकी ने एक कल्पित नायक के नाम की ओट में अपने ही जीवन-व्यापी दुख, निदारुण निराशा तथा निष्करुण निर्यातन की करुण कहानी का वर्णन मार्मिक शब्दों में करना शुरू कर दिया। अपने जीवन का पिछला इतिहास समाप्त करने पर उसने कहा : "अन्त में रोग-शोक, असफलता और निर्धनता से पीड़ित वह नायक एक नवयुवती से प्रेम करने लग जाता है। वह लड़की बड़ी सुशील, समझदार और सहृदय है। अपनी इस नायिका का नाम मैंने अन्ना रक्खा है।" तब अन्ना को याद नहीं आया कि उसका अपना नाम भी अन्ना है। उसने सुन रक्खा था कि डास्टाएव्सकी एक दूसरी अन्ना से प्यार करता है और इस बात का ख्याल करके वह ईर्षा से जल उठी। डास्टाएव्सकी ने कहा : "अब तुम्हीं बताओं, मेरे रोगी, दुखी असफल कलाकार नायक को, जिसकी उम्र काफी बड़ी हो चुकी है, क्या मेरी नायिका प्यार कर सकती है? क्या यह बात सम्भव और स्वाभाविक हो सकती है?"

अन्ना ने उत्तर दिया :"क्यों नहीं! यदि तुम्हारी अन्ना चंचल स्वभाव वाली नायिका नहीं है और गंभीर स्वभाव की सहृदय लड़की है तब वह तुम्हारे विचारशील, सहृदय और दुखी नायक को अवश्य प्यार करेगी!"

उत्तेजित होकर डास्टाएव्सकी ने कहा : "क्या तुम सच कहती हो? अच्छा, एक मिनट के लिये फर्ज कर लो कि मैं ही वह नायक हूँ और तुम हो नायिका। यह भी मान लो कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ और तुमसे विवाह का प्रस्ताव करता हूँ। ऐसी हालत में तुम क्या उत्तर दोगी? बोलो अन्ना, जल्दी बोलो!"

अन्ना सब समझ गई। एक बार उसे इच्छा हुई कि यथार्थ उत्तर न देकर इस बात को टाल दे। पर डास्टाएव्सकी की घबराई हालत देख कर उसे अधिक द्विविधा में रखना उसने उचित न समझा। और अपने हृदय की उसे वास्तविक इच्छा प्रकट करते हुए उसने कहा : "मैं कहूँगी कि मैं भी तुम्हें चाहती हूँ और जीवन भर तुम्हें चाहूँगी।"

डास्टाएव्सकी आनन्द से उछल पड़ा और उसने व्याकुल प्रेम के विह्वल आवेग से उसे गले से लगा लिया। इधर अन्ना के हर्ष का भी पारावार नहीं था। जिस बात का स्वप्न वह इतने दिनों से देख रही थी उसे आज सचमुच सफल होते देख कर उसे अपने सौभाग्य पर विश्वास नहीं होना चाहता था। अन्ना ने उसी दिन अपना हर्ष अपनी सहेलियों के आगे प्रकट किया। उसकी सहेलियों ने उसे हतोत्साह करते हुए कहा कि डास्टाएव्सकी जैसे मिरगी रोग से ग्रस्त अधेड़ आदमी के साथ विवाह होने की बात पर विशेष प्रसन्न होने का कोई कारण नहीं है। पर अन्ना की आत्मा का एक-एक अणु उस हतभाग्य और रोगी लेखक के प्रेम रस से भींग चुका था।

यथासमय दोनों का विवाह हो गया। सुदीर्घ ४० वर्ष के बाद डास्टाएव्सकी के जीवन में यथार्थ सुख की प्रथम छाया पड़ी। विवाह के बाद जब वह 'हनीमून' के सिलसिले में जर्मनी गया तो वहाँ जुए में हार कर उसने ओवरकोट और अपने स्त्री के गहने और कपड़े तक बेच डाले। तथापि उसके प्रति अन्ना का प्रेम घटने के बजाय इस दुख से और बढ़ गया। अपनी उस समय की डायरी में उसने कई बार लिखा है : "मेरा प्यारा दुखी फेड्या (डास्टाएव्सकी)! वह मुझे कितना अधिक प्यार करता है! और मैं भी उसे कितना चाहती हूँ! हमें धन नहीं चाहिये, हम प्रेम को लेकर ही सुखी हैं।"

वास्तव में डास्टाएव्सकी के स्वप्न के अनुसार उसे सच्चा हीरा मिला था। इस गृहलक्ष्मी को पाकर उसने मृत्यु पर्यन्त अपने को धन्य समझा। और उसने जीवनव्यापी निर्यातन के घाव बहुत कुछ भर गये।
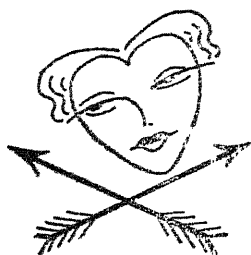
नादिरशाह की अमर प्रेमिका सितारा

नादिरशाह की भारत-विजय-यात्रा काफी आगे बढ़ चुकी थी और दिल्लीपति की विलास-लालसा-मग्न, मदिरा-मोहमयी निद्रा भंग होने लगी थी। शान्ति और आत्मरक्षा की पुंसत्वहीन भावना से प्रेरित होकर वह स्वयं सदलबल नादिर के पास आकर सर झुका चुके थे। नादिर की छाती विजयोद्दीत गर्वोल्लास से फूली नहीं समाती थी।

संध्या का समय था। बुखारा और फारस की बहुत बढ़िया कालानों के ऊपर लगे हुए कारचोबी मसनद पर लेटे लेटे, सुनहरी सटक को मुंह में डाल कर खुशबूदार तमाखू का धूँआ बाहर निकालते हुऐ नादिर अपने खेमे से निस्तब्ध प्रकृति पर अस्तमान सूर्य की सुनहली किरणों की छटा देख रहा था, और एक करुण-कोमल उदासी इस वज्र-कठोर पुरुष के हृदय पर धीरे धीरे अपना घर कर रही थी। अचानक बाहर बहुत से व्यक्तियों का सम्मिलित पदशब्द सुनाई दया। नादिर का ध्यान भंग हुआ।

एक नौकर ने भीतर प्रवेश किया और झुक कर आदाब बजाते हुए अत्यन्त नम्रतापूर्वक सूचित किया कि दिल्लीपति के यहाँ से अन्यान्य उपहारों के साथ पचास खूबसूरत गुलाम लड़के और उतनी ही लड़कियाँ आई हुई हैं। नादिर को लड़कियों के संबंध में सबसे अधिक कुतूहल हुआ। देखने के लिये वह उठकर एक दूसरे खेमे में गया। मुगलों के शाही महल की बाँदियों की सुन्दरता के संबंध में उसने बड़ी तारीफ सुन रखी थी। उन्हें देखने पर उसने सोचा कि वे निस्संदेह प्रशंसा के योग्य

। पर नादिर की आंखें विशेष रूप से एक अनुपम-सुन्दरी गंभीरस्वभाव नवयुवती के रूप के प्रति प्रबल वेग से आकर्षित हो रही थीं। नादिर के पूछने पर कि वह कौन है, खोजे ने झुक कर जवाब दिया कि वह एक राजपूत-जातीय मुसलमान कुमारी है। इसपर लड़की ने गरज कर कहा: "मैं कुमारी नहीं, मेरा विवाह हो चुका है।" उसके इस दुस्साहसपूर्ण दुर्वचन से बिगड़ कर खोजा ज्योंही छुरा निकाल कर उसे धमकाना ही चाहता था कि लड़की ने पहले ही छुरा निकाल कर उत्तेजित आंखों से उसकी ओर देखा खोजा घबरा कर दो कदम पीछे हट गया।

नादिर यह सब देख कर हँसा। लड़की की वीरता उसके मन भा गई। उसने गंभीरतापूर्वककहा: "यह छुरा मुझे दो।"

लड़की टस से मस न हुई। नादिर ने कुछ कड़ी आवाज में कहा: "मैं कहता हूँ यह छुरा मुझे दे दो।" नादिर के शब्दों में रोष प्रकट होता था। कुछ असमंजस के बाद आखिर लड़की ने छुरा उसके हाथ में दे ही दिया। नादिर एक बार अर्थभरी मुसकान से उसकी ओर देख कर वहां से आगे बढ़ा। अपने तम्बू में वापस जाकर प्रबल प्रतापी शाहंशाह नादिर शाह गंभीर चिंताओं में मग्न हो गया। आज एक तुच्छ लड़की की तेजोद्दीप्त आत्मा ने उसका सारा विश्वविजयी गर्व चूर चूर कर दिया था। नादिर कैसा ही उद्दंड तथा प्रचंड-प्रकृति क्यों न रहा हो, तथापि वह पुरुष था—वास्तविक पुरुष। हीनबल, मदविह्वल दिल्लीश्वर की तरह वह सहज में ही किसी भी रूपवती ललना के कामपाश में बँध जाने वाला आदमी नहीं था। यथार्थ नारी के वास्तविक सौन्दर्य की परख और कदर करना वह जानता था। उसने ऐसी ही स्त्री को देखा था। इसीलिये उसके अंतःप्रदेश में हाहाकार मच रहा था।

नादिर ने उस ढीठ लड़की को अपने पास बुलाने का निश्चय किया। आगा बाशी ने लड़की को लेकर भीतर प्रवेश किया। इस समय उसकी

आँखों में ढिठाई के बदले नववधू की विनम्र लज्जा की सुमधुर छाया वर्तमान थी, जिससे नादिर के हृदय का आवेग और भी बढ़ गया। इस समय वह पहले से हजार गुना अधिक सुन्दरी दिखाई दे रही थी। नादिर मुग्ध और चकित था। पूछने पर मालूम हुआ कि लड़की का नाम सितारा है। वह सिर नीचा किये खड़ी थी।

नादिर ने नम्रतापूर्वक कहा: "घबराती क्यों हो?" सितारा ने एक बार भीता हरिणी की तरह चकित दृष्टि से नादिर की ओर देखा और फिर आँखें नीची कर लीं। उसे विश्वास था कि नादिर ने उसे मृत्युदंड देने के लिये बुलाया है। कुछ समय पहले तक वह अपनी मृत्यु ही श्रेयस्कर समझती थी। पर अब? अब उसकी सारी आत्मा, उसका रोम-रोम जीवन की लालसा से तड़प रहा था। आज तक उसका जीवन चापलूसों, नपुंसकों तथा कठपुतलों के बीच में बीता था, पर आज उसने एक वास्तविक शक्तिशाली पुरुष का परिचय प्राप्त किया था। केवल क्षण भर के परिचय से उसके जीवन की धारा ही बदल गई थी। पुरुष पाठक शायद नहीं समझेंगे कि नादिर जैसे जालिम को सितारा जैसी आत्म सम्मान वाली रमणी किस प्रकार प्यार कर सकती थी। पर स्त्री-हृदय की जटिल मनोवृत्तियों की सूक्ष्मता से परिचित व्यक्तियों को यह बात समझाने की आवश्यकता न होगी कि एक तेजस्विनी, बुद्धिमती और समझदार नारी के लिये नादिर जैसे सुदृढ़ तथापि शान्त, जालिम तथापि सुशिष्ट व्यक्ति के आकर्षण का मोह कैसा प्रबल हो सकता था।

असल में नादिरशाह उस अर्थ में जालिम नहीं था जिस अर्थ में वह मुगलों के गुलाम चापलूस इतिहासज्ञों द्वारा बतलाया गया है। यदि नादिरशाह जालिम था तो नैपोलियन मूर्तिमान शैतान था। नादिर का सच्चा इतिहास अभी तक लिखा नहीं गया है। हर्ष का विषय है कि प्रो०

यदुनाथ सरकार ने इस संबन्ध में मूल सूत्रों से यथार्थ बातें मालूम करने की चेष्टा की है और उन्होंने नादिर को बहुत झूठे दोषों से मुक्त किया है।

कुछ भी हो, सितारा को नादिर ने बहुत कुछ दिलासा दिया। जब उसे अपने प्राणों की रक्षा का भरोसा हो गया तो नादिर के पूछने पर उसने अपने दुखी जीवन का इतिहास उसे सुनाया। वह एक राजपूत घराने की लड़की थी पर बचपन से ही कुछ लुटेरों ने उसे पकड़कर एक मुगल सैनिक के साथ उसका विवाह करा दिया। उसके अत्याचारों से तंग आकर वह भागी और कुछ मारवाड़ी व्यापारियों ने उसे सुरक्षित दशा में दिल्ली पहुँचा दिया। वहाँ सम्राट की एक रानी ने उसके रूप और गुण से प्रसन्न होकर उसे अपनी लौंडी बनाकर रक्खा और तब से मुगल सम्राट के रंग महल में ही उसका जीवन बीता। नादिर कुछ देर तक चुपचाप भाव विभोर होकर उसकी बातें सुनता रहा। इसके बाद उसने आवेग के साथ कहा: "आज से मैं तुम्हें अपनी रानी बनाकर रक्खूँगा। क्या तुम्हें मेरा अनुरोध स्वीकार है? बोलो सितारा, मेरी बात का शीघ्र उत्तर दो। मैं बेचैन हूँ।"

सितारा को अपने सौभाग्य पर विश्वास नहीं होता था। वह पुलक-विह्वल होकर चुप रही। "मौनं सम्मति लक्षणम्" जानकर नादिर ने आगावाशी से कह कर एक मुल्ला को बुलाया और सितारा से विवाह कर लिया। अमूल्य रत्नों से जड़ी हुई सितारा अमूल्यतर सौभाग्य रत्न अपने साथ लेकर प्रेम के आँसू बहाती हुई अपने सुसज्जित कमरे में वापस चली गई।

सितारा के इस अपूर्व सौभाग्य की ईर्षा से शीराजी नाम की एक रमणी जलने लगी। शीराजी नादिर के मंत्री की बहन थी और नादिर की

प्रेम-पात्री रह चुकी थी। वह भीतर ही भीतर गुप्त रूप से उसके सर्वनाश की षड्यंत्र रचने लगी।

जब नादिर ससैन्य दिल्ली पहुंचा तो सितारा एक अलग महल में सम्राज्ञी के तौर पर रहने लगी। एक बांदी के रूप में वह दिल्ली से गई थी और रानी के रूप में वहाँ वापस आई। भाग्य-चक्र और किसे कहते हैं ! सम्राट के साथ नादिर की सुलह की बातें चल रही थीं। अचानक खबर आई कि मुगल सैनिकों ने नादिर के सोये हुए सिपाहियों पर बिना किसी उत्तेजना के आक्रमण कर दिया और उसके सैकड़ों आदमी मारे जा चुके हैं। सब बातें अच्छी तरह दरियाफ्त करने पर नादिर ने हुक्म दिया कि शहर में लूट मचा दी जाय। सम्राट थर थर कांपने लगे। सम्राज्ञी ने सितारा को एकांत में बुला कर उससे प्रार्थना की कि वह नादिर से नगर वासियों पर दया की प्रार्थना करे। सितारा ने वचन दिया और नादिर के पास जाकर हाथ जोड़ कर दया-भिक्षा चाही। नादिर ने मुस्करा कर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उसकी आज्ञा से ईरानी सिपाही शान्त हो गये। पर मुगल सैनिकों की ज्यादती से वे लोग फिर उत्तेजित हो उठे और भयंकर हत्याकांड मचने लगा। सितारा को इस बात का बड़ा दुख हुआ कि उसकी प्रार्थना पर भी अत्याचार जारी है। पर उसे खबर नहीं थी कि नादिर ने उसकी खातिर अपने सैनिकों को यथासंभव शान्ति करने की कितनी चेष्टा की थी।

हत्याकांड के बाद जब शांन्ति हुई और दिल्ली से अपरिमित धनराशि लेकर और कोहनूर माणिक अपने मस्तक पर धारण करके नादिर सदल बल फारस की ओर लौटा तो सितारा हत्याकांड से दुःखित होने पर भी अपनी विजयी पति की गौरव गरिमा से हर्षित हुई और उसके अटूट प्रेम से अपने को धन्य समझती हुई आन्तरिक मन से उसकी कल्याण

कामना करती चली गई। दिल्ली से वापस आते समय एक बार एक पड़ाव पर रात के समय जब नादिर गहन निद्रा में मग्न था तो एक आततायी उसकी हत्या की उद्देश्य से गुप्तरूप से भीतर घुस आया। सितारा ने उसके पावों की आहट पाकर और उसके हाथ में चमकता हुआ छुरा देख कर घबरा कर तत्काल नादिर को जगा दिया। उसके प्राण बच गये। सितारा ने एक लम्बी सांस ली। नादिर ने उसके इस उपकार के लिये हृदय से उसे धन्यवाद दिया।

राजधानी के पास पहुँचने पर नादिर को खबर मिली कि उसका बेटा रेजा खां उससे मिलने आ रहा है। उसे हर्ष भी हुआ और आशंका भी। गुप्तचरों से उसे जो बातें मालूम हुई थीं उनसे उसके मन में यह संदेह उत्पन्न हो गया था कि रेजा खां स्वयं सम्राट के पद पर प्रतिष्ठित रहने की इच्छा रखता है। धीरे धीरे यह आशंका उसके मन में घर करती गई। और अन्त में नादिर ने तब तक उससे सावधान रहने का निश्चय कर लिया जब तक कोई संदेह न रह जाय।

पर सितारा, जो स्वभावतः स्नेहशीला थी, विश्वास ही नहीं करना चाहती थी कि बेटा बाप के प्रति हिंसापरायण हो सकता है। उसकी बड़ी इच्छा थी कि रेजा खां को पुत्र रूप में पाकर वह कृतार्थ होगी, पर बीच में यह झगड़ा आ खड़ा हुआ। उसने रेजा खां का पक्ष लेकर नादिर को समझाने की चेष्टा की, पर नादिर को उसका पक्षपात अच्छा नहीं मालूम हुआ और वह इसे सितारा की कृतघ्नता समझने लगा।

अब शीराजी को, जो उसकी जानी दुश्मन थी, अपना बदला लेने का मौका मिला। इधर उसने रेजा खां के खिलाफ झूठमूठ बहुत सी बातों से नादिर के कान भर कर उससे नये सिरे से घनिष्ठता बढ़ा ली थी। उसने धीरे धीरे नादिर के मन में यह घातक विश्वास जमा दिया कि सितारा

और रेजा खां के बीच गुप्त रूप से पत्रों का आदान प्रदान होता है और सितारा रेजा खां से मिल कर नादिर की हत्या का षड्यंत्र रच रही है। अभागिनी सितारा ! उसे मुतलक इस षड्यंत्र की खबर न थी।

नादिर अपने अन्तःकरण में इस बात का विश्वास नहीं करना चाहता था कि सितारा उसकी हत्या की आकांक्षिणी हो सकती है। पर ईर्षा की ज्वाला और संदेह का विष बड़े भयङ्कर होते हैं। कुछ भी हो, अपने पुत्र को वह जान से नहीं मार सकता था। क्योंकि वह उसे जी जान से चाहता था। पर उसकी कृतघ्नता से व्यर्थ पीड़ित होकर अन्त को एक दिन उसने निश्चय किया कि उसकी आँखें लोहे की सलाख से फोड़ डाली जायँ। राजकुमार की माँ को इसकी खबर लगी तो उसने सितारा से प्रार्थना की कि वह उसे बचाये। करुण-हृदय सितारा अपने स्वभाव के भोलेपन से प्रेरित होकर नादिर के पास गई। नादिर की ईर्षा और अधिक धधक उठी। पर सितारा करुण स्वर से प्रार्थना करती गई। शीराजी द्वारा दिये गये विषैले इंजेक्शनों से उत्तेजित और मदोन्मत्त होकर नादिर ने उसपर अस्त्र चला दिया। खून से लथपथ होकर सितारा झट से जमीन पर गिर पड़ी।

अब नादिर को चैतन्य हुआ। वह सितारा की देह के ऊपर व्याकुल वेग से जार जार रोने लगा। आगाबाशी सितारा को उठा कर भीतर ले गया और उसकी सेवा शुश्रुषा करने लगा। कुछ समय बाद वह चंगी हो गई। आगाबाशी ने उसे गुप्तरूप से एक आर्मीनियन के यहा भेज दिया। इधर नादिर सितारा को मरी जान कर बौरा गया था। राज काज सब चौपट होने लगा। उसे अब मालूम हुआ कि सितारा के कोमल-कमनीय और सुकुमार हृदय के प्रेम का क्या महत्त्व था। शासन का कार्य ढीला पड़ने से उसके दुश्मनों की संख्या बढ़ती चली गई।

सितारा का भी प्रेम घटने के बजाय बढ़ गया था और वह नादिर से अलग होने की अपेक्षा मृत्यु ही अच्छा समझ रही थी। दैवयोग से एक दिन नादिर ने शिकार के लिये चक्कर काटते हुए उसी गांव में आकर डेरा डाला जहाँ सितारा थी। सितारा को जब यह बात मालूम हुई तो वह किसी का निषेध न सुन कर अपने शाही पति से मिलने दौड़ी गई। नादिर के हर्ष का ठिकाना न रहा। अपनी वर्तमान दुरवस्था में उसे सितारा के प्रेम की बड़ी आवश्यकता थी। कुछ दिनों तक दोनों प्रेम-मग्न होकर बड़े आनन्द से रहे। पर हतभागिनी सितारा का भाग्य रूपी सितारा बुझने पर था। एक रात एक आततायी ने खेमे के भीतर घुस कर नादिर शाह की हत्या कर डाली। इस बार सितारा उसे न बचा सकी। हताश होकर उसने भी अपने कलेजे में छुरा भोंक दिया और नादिर के लाश के ऊपर लोट कर अनंतकालिक प्रेम पाश में उसे बांध कर सदा के लिये सो गई।

बायरन और उसकी प्रेमिकाएं

बायरन की काव्य-प्रतिभा और उसके प्रेम-सम्बन्धों ने संसार में जैसी अद्भुत ख्याति (या कुख्याति) प्राप्त की है वैसी बहुत कम कवियों के जीवन में सम्भव हुई है। आज भी संसार के अनुभवहीन तरुण साहित्यिक इस घनघोर विलासी, विद्रोही, उच्छृंखल और स्त्री-विद्वेषी कवि की प्रेम सम्बन्धी लुभावनी कविताओं के बड़े उपासक हैं। "स्त्री विद्वेषी" शब्द का प्रयोग हमने जान-बूझ कर किया है। जो कवि अपने जीवन में पचासों स्त्रियों का प्रेमिक रह चुका हो और प्रेम-सम्बन्धी मनोमुग्धकर कविताएं लिखने के लिये प्रसिद्धि पा चुका हो उसे "स्त्री-विद्वेषी" बताना वास्तव में विरोधाभासात्मक लग सकता है। पर वास्तव में मनोवैज्ञानिक सत्य यही है। स्त्री जाति का इतना बड़ा घातक शत्रु, इतना बड़ा विद्वेषी दूसरा कोई व्यक्ति मुश्किल से मिलेगा। जिन-जिन स्त्रियों से बायरन ने प्रेम किया (और उनकी संख्या बहुत बड़ी रही है) उन्हें विनाश के गर्त में ढकेल कर ही उसने चैन लिया। उनमें से किसी के प्रेम की परिणति पागलपन में हुई, किसी ने आत्महत्या की, कोई असहाय मानसिक यंत्रणाएं पाकर, घुल-घुल कर प्रेम की आहुति में अपने जीवन का होम करती रही। आज का मनोवैज्ञानिक तो यहाँ तक कहने का दावा रखता है कि बायरन के भीतर स्त्री जाति के प्रति विद्वेष की भावना जन्मजात थी और उस विद्वेष की चरितार्थता के लिये ही उसने विभिन्न स्त्रियों से प्रेम किया था। उन्हें अपनी काव्य प्रतिभा और धोखे बाजी से भरे हुए मोहक व्यक्तित्व से अपनी ओर अत्यन्त प्रबलता से आकर्षित करके, उन्हें समाज और संसार की सुरक्षित स्थिति से बाहर निकाल कर अंत में उसने प्रायः सबको एक-एक

करके नरक के चौराहे पर घसीट कर एकाकी अवस्था में जल-जल कर करने को छोड़ दिया। बायरन की सफाई में उसके 'वकील' यह कह सकते हैं कि अपनी उन सब प्रेमिकाओं पर सुन्दर-सुन्दर कविताएं लिखकर उसने उन्हें अमरता की स्थिति प्रदान कर दी है। वास्तविकता इस ऊपरी 'सत्य' के बिलकुल विपरीत है। इसके दो प्रमाण हैं। एक तो यह कि उन्नीसवीं शताब्दी की सस्ती छायावादी काव्य-रुचि आज के युग में अत्यन्त पोपली सिद्ध हो चुकी है। इसलिए जो सस्ती भावुकता से भरी प्रेम-सम्बन्धी 'अमर कविताएं' बायरन ने अपनी प्रेमिकाओं के सम्बन्ध में लिखी थीं उनका कोई विशेष मूल्य अब नहीं रह गया है। आज की गम्भीर रुचिपूर्ण साहित्यिक जनता यह जान चुकी है कि नारी को केवल आत्म-विलास की सामग्री समझने वाले कवि उसके बाहरी व्यक्तित्व को लेकर जो लच्छेदार बातें लिखते आए हैं उनकी कलात्मक सर्जना कभी स्थायी महत्व की चीज नहीं हो सकती। दूसरे, बायरन की प्रेमिकाओं के लिए उस काल्पनिक अमरता का कोई मूल्य नहीं हो सकता था जिसे पाने के लिए उन्हें अत्यन्त भयावह रूप से घोर आत्मिक यंत्रणा, मानसिक अशान्ति और शारीरिक पीड़न द्वारा कठिन मूल्य चुकाना पड़ा था।

बायरन की प्रेम-कथाओं का आरंभ उसके बचपन से ही हो गया था। जब वह नौ वर्ष का था तभी एक लड़की के प्रति वह अत्यन्त उत्कट रूप से आकर्षित हो गया था। इस लड़की का नाम मेरी डफ था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रायः सभी यूरोपियन कवियों की तरह बायरन का यह स्वभाव था कि जिस लड़की के प्रति वह आकर्षित होता था या जिससे उसका प्रेम-सम्बन्ध स्थापित हो जाता उसके संबंध में तत्काल कविता रच डालता था। लड़कपन के इस प्रेम की नायिका के प्रति भी उसने एक कविता रच डाली, जिसे पढ़कर उसके सम्बंधियों को उसकी

उस असामयिक मनोवृत्ति पर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उस उम्र में भी कोई लड़का प्रेम की अनुभूति को इस तीव्रता से व्यक्त कर सकता है, यह बात स्वभावतः उन्हें बहुत असाधारण लगी।

अपने स्कूली जीवन में ही बायरन एक दूसरी लड़की के प्रेम जाल में फँस गया। इस प्रेम का प्रभाव उसके जीवन में काफी गहरा पड़ा। उस लड़की का नाम मेरी चावर्थ था। वह एक बहुत बड़े सामन्त की लड़की थी। वह बायरन से दो वर्ष बड़ी थी। बायरन की अवस्था उस समय केवल १६ वर्ष की थी। मेरी चावर्थ का सौंदर्य वास्तव में अत्यन्त आकर्षक था। और वह काव्य-कला से भी प्रेम रखती थी। पर वह बड़ी समझदार थी और जानती थी कि बायरन जैसे उत्तरदायित्वहीन लड़के के प्रेम का कोई मूल्य उसके लिये नहीं हो सकता। फिर भी बायरन की सुन्दरता पर वह भी मुग्ध थी और इसलिये उसे दूर ही से नचाते रहने में उसे सुख प्राप्त होता था। उस वर्ष बायरन अपने इस नये सूर्य के चारों ओर ही मंडराता रहा और हैरो में उसने अपनी स्कूली पढ़ाई को भी उसकी खातिर तिलांजलि दे दी। उसकी माँ इस बात से मेरी चावर्थ के परिवार से बहुत नाराज हुई।

पर इस प्रेम की परिणति बायरन के लिये हितकर सिद्ध नहीं हुई, क्योंकि मेरी चावर्थ का विवाह जान मस्टर्स नामक एक प्रभावशाली व्यक्ति से हो गया। इस समाचार से बायरन के तरुण हृदय को बड़ा भारी आघात पहुँचा। अपने इस प्रेम-संबंधी अनुभव को लेकर बायरन ने कई सुन्दर कविताएं रचीं, जिनमें 'ड्रीम' (स्वप्न) नाम की कविता सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

कई वर्ष बाद फिर मेरी से बायरन की भेंट हुई। तब वह अपने पति से झगड़ कर अलग हो चुकी थी। कुछ लेखकों का कहना है कि उस

स्थिति में उससे बायरन का अवैध प्रेम-संबंध स्थापित हो गया था। पर इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। बाद में जान मस्टर्स ने फिर अपनी पत्नी से मेल कर लिया, पर तब से वह बायरन का जानी दुश्मन बन गया, और मेरी और बायरन के प्रेम का भी सदा के लिए अंत हो गया।

मेरी चावाथ के विवाह के बाद से बायरन का प्रेम-संबंध विभिन्न सुन्दरियों से चलता रहा। उसकी प्रेम-सम्बन्धी कविताएँ तत्कालीन सुशिक्षित अंग्रेज महिलाओं में काफी लोकप्रिय हो चुकी थीं। इसके अतिरिक्त उसके आकर्षक व्यक्तित्व का प्रभाव भी भावुक महिलाओं पर घातक रूप से मोहक सिद्ध हो रहा था। वह अपने रोमांटिक आकर्षण के लिये इस कदर बदनाम हो चुका था कि लोग अपनी स्त्रियों और बहनों को भरसक उसके संसर्ग से बचाने के लिये प्रयत्नशील रहते थे। पर इतने प्रयत्नों के बाद भी सभी उससे बच नहीं सके। बायरन की जो प्रेमिकाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं उनमें लेडी केरोलीन लैंब नामी की महिला भी उसके खतरनाक प्रभाव से न बच सकी, जिसके परिणाम स्वरूप उसका जीवन घोर यातनाओं में बीता और वह पागल तक हो गयी थी।

लेडी केरोलीन एक बहुत बड़े लार्ड की लाड़-प्यार से पली मुंह-लगायी लड़की थी। वह स्वभाव से असच्चरित्र नहीं थी। उसके स्वभाव में केवल एक दोष यह था कि वह अत्यन्त भावुक और जिद्दी थी। जब उसकी अवस्था बारह वर्ष की थी तभी वह अपने भावी पति विलियम लैंब की कविताएँ पढ़ कर उसके प्रति उत्कट रूप से आकर्षित हो चुकी थी। बाद में उससे प्रत्यक्ष परिचय होने पर वह उससे प्रेम करने लगी। दोनों का विवाह हो गया। इस विवाह के फलस्वरूप उसने तीन बच्चों

को जन्म दिया, जिनमें केवल एक जीवित रहा काफी अर्से तक अपने पति के साथ उसकी अच्छी पटती रही, यद्यपि बीच बीच में अपने जिद्दी स्वभाव के कारण वह पति से खूब झगड़ती भी थी।

१८१२ में बायरन की कविताओं ने सारे इंगलैंड में तहलका मचा दिया था। महिलाएं तो उन पर पागल-सी हो उठी थीं। वह वर्ष साहित्यिक इतिहास में 'बायरन-फीवर', ('बायरन-ज्वर') का युग कहा जाता है। उसी वर्ष लेडी केरोलीन ने पहली बार बायरन की कविताएं पढ़ी, और पढ़ते ही उसके तीव्र भावुकतापूर्ण हृदय पर ऐसा उन्मादकारी प्रभाव पड़ा कि वह उससे मिलने के लिये व्याकुल हो उठी। उसने रोजर्स नामक अपने एक परिचित व्यक्ति से कहा: "मैं उसे देखना चाहती हूँ, मैं उस पर मर चुकी हूँ।"

रोजर्स ने उसका उत्साह ठंढा करने के लिये कहा: "उसका एक पांव लंगड़ा है और उसे अपने नाखूनों को दाँत से काटते रहने की गंदी आदत है।" वास्तव में बायरन एक पांव से कुछ लंगड़ाता था, जिसका मेरी चावर्थ पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ा था। बायरन अपने इस तनिक लंगड़ेपन के लिए जीवन भर बहुत दुःखित रहा। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इस लंगड़ेपन के कारण ही उसके हृदय में आत्म-लघुता की भावना उत्पन्न हो गयी और प्रतिक्रिया-स्वरूप वह जीवन भर मानव-विद्वेषी और उच्छृंखल-प्रकृति बना रहा।

पर हठीली लेडी केरोलीन का उत्साह इस बात से तनिक भी कम नहीं हुआ। उसने कहा: "यदि वह मक्खी से भी घृणित हो तो भी मैं उससे मिलने के लिए विकल हूँ।"

फल यह हुआ कि लेडी वेस्टमूरलैण्ड नाम की एक प्रभावशालिनी महिला के यहाँ बायरन से उसका परिचय कराया गया। बायरन को

पहली बार देखते ही उसका हृदय अपने आपे में न रहा। उसी दिन रात में उसने अपनी डायरी में लिखा : "वह सुन्दर पीला मुख मेरे भाग्य का विधायक है।"

उसके बाद जब दूसरी बार बायरन से उसकी भेंट हुई तो दोनों में एक ही दिन में काफी घनिष्ठता हो गयी। तब से प्रायः नौ महीने तक बायरन लेडी केरोलीन के ही भवन में अत्यन्त घनिष्ठ रूप से रहा। दोनों के प्रेम की चर्चा चारों ओर फैल गयी, क्योंकि लेडी केरोलीन भी इंगलैंड के सुसंस्कृत समाज में अपनी सांस्कृतिक रुचि और कलात्मक व्यक्तित्व के कारण कुछ कम प्रसिद्ध नहीं थी। कुछ भी हो, वह बायरन को अपना सर्वस्व न्योछावर कर चुकी थी। अपनी मान-प्रतिष्ठा, सामाजिक स्थिति, अपना रूप-यौवन और अपना विशाल धन सब कुछ उसने उसको अर्पण कर दिया।

पर यह सब कुछ होने पर भी बायरन के समान प्रेम-पंछी किसी भी सोने के पिंजड़े में या नीड़ में बंधा नहीं रह सकता था। वह शीघ्र ही उस प्रेम-बंधन से उकता गया। यहाँ तक कि वह लेडी केरोलीन से घृणा करने लगा। यह घृणा बायरन के स्वभाव के बिलकुल अनुकूल थी। वह नये नये पुष्पों का मधु ग्रहण करते रहने का आदी था, एक ही कमल के भीतर बंद पड़े रहने से उस कमल के प्रति घोर विद्रोही हो उठना उसके लिये सर्वथा स्वाभाविक था। मनोवैज्ञानिकों का तो यहाँ तक अनुमान है कि जिस समय बायरन लेडी केरोलीन के प्रेम में परिपूर्ण रूप से डूबा हुआ था उस समय भी वह अपने अज्ञान में उसके प्रति घोर घृणा का भाव पोषित किए हुए था। सच बात तो यह है कि 'प्रेमिकों का राजकुमार' कहलाने और बहुसंख्यक नारियों से प्रेम-संबंध स्थापित किये रहने पर भी वह आजीवन नारी जाति का घोर विद्वेषी रहा, और,

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, केवल नारी-जाति के प्रति जन्म से ही अपने विकृत स्वभाव में वर्तमान प्रतिहिंसा की भावना को चरितार्थ करने के उद्देश्य से वह उनसे प्रेम करता रहा और उन्हें आत्म-विनाश के पथ की ओर ढकेलता रहा। उसकी कविताओं में नारी-जाति के संबंध में जो लम्बे-चौड़े तथा कथित 'प्रशंसात्मक' और मनोहर प्रवचन कहे गये हैं, वे मनोविश्लेषक-बुद्धि-रहित पाठकों को भले ही उदात्त-भावनापूर्ण मालूम पड़ें, पर वास्तव में उनका भीतरी रहस्य यदि विश्लेषण द्वारा उद्घाटित किया जाय तो पता चलेगा कि उनमें नारी को केवल पुरुष की विलास-सामग्री माना गया है। उनमें यदि नारी की 'महनीयता' किसी बात पर मानी गयी है तो केवल इस पर कि वह सदियों से पुरुष-जाति की दासता स्वीकार करती आई है और पुरुष की घोर स्वार्थ-जनित महत्वाकांक्षा की चरितार्थता के लिये आत्म-बलिदान स्वीकार करती रही है।

अपने स्वभाव की इस मूलगत प्रवृत्ति के अनुसार ही बायरन ने सहसा लेडी केरोलीन को एक दिन दूध की मक्खी की तरह दूर फेंक दिया। जिस महिला ने अपनी मान-प्रतिष्ठा, कुल-मर्यादा सबको तिलांजलि दे कर उसके लिए अपना सब कुछ त्याग डाला था उसे अपने घृणित प्रेम द्वारा कलंकित करने के बाद वह उसके प्रति इस कदर विद्वेषी हो उठा कि जब एक बार उस परित्यक्ता प्रेमिका ने अत्यन्त प्रेम-भरे विनीत शब्दों में लिखा : "मैं और कुछ नहीं चाहती, केवल इतना ही चाहती हूँ कि मुझे समय-समय पर याद करते रहना", तो बायरन ने अत्यन्त नृशंस रूप से कठोर भावों से भरी एक कविता उस पत्र के उत्तर में लिखी, जिसका सार यह है : "तुझे याद करता रहूँ! ठीक है, मैं तुझे अवश्य याद करूँगा! केवल मैं ही नहीं, तेरा पति भी तुझे सदा

याद करता रहेगा, क्योंकि उसके साथ तू ने बेवफाई की है और मेरे लिए तेरा प्रेम शैतान की तरह रहा है।"

वास्तव में कोई भी सहृदय पुरुष इस हद तक नीचतापूर्ण निष्ठुरता से भरा उत्तर किसी भी हालत में उस स्त्री के लिए नहीं लिख सकता जो एक बार प्रेमिका रह चुकी हो। लेडी केरोलीन अपने पति के लिए चाहे कैसी भी धोखेबाज क्यों न रहीं हों बायरन को कोई अधिकार उसे उस पाप के लिए कोसने का नहीं था क्योंकि उसके प्रति तो वह अन्त तक वफादार ही रही।

बायरन के इस उत्तर का फल यह हुआ कि लेडी केरोलीन पागल हो गई। उसी हालत में उसने एक दिन बायरन की एक प्रतिमूर्ति बनाकर उसे जला डाला। बड़े-बड़े डाक्टरों के इलाज के बाद बड़ी मुश्किल से उसका दिमाग कुछ ठिकाने पर आया।

मार्च १८२४ की बात है। तब लेडी केरोलीन मानसिक भ्रम से बहुत कुछ मुक्त हो चुकी थीं, पर अचानक सख्त बीमार पड़ गयी थीं। उसी हालत में उसने एक दिन आधी रात में अचानक बायरन की सी आकृति के किसी व्यक्ति (अथवा छाया) को अपने पलंग के पास बैठा हुआ देखा। लेडी केरोलीन के ही शब्दों में—"उस समय बायरन की आकृति अत्यन्त विकृत और भयानक दिखायी देती थी और मेरी ओर उत्कट दृष्टि से देखता हुआ वह जैसे दाँत पीस रहा था। मै मारे भय के चिल्लायी कि "मुझे बायरन से बचाओ।" बाद में मैंने अपने पति से और अपने भाई से इस घटना का हाल बताया। इस घटना के कुछ ही समय बाद (अप्रैल १८२४ में) मुझे संवाद मिला कि बायरन की मृत्यु हो गयी है।"

बायरन की मृत्यु का बहुत बुरा प्रभाव लेडी केरोलीन पर पड़ा! वह वातस्व में अन्त तक उसे हृदय से चाहती रही। वह बीमारी की हालत

में फिर एक बार पागल हो गयी। उसका पति उसे पहले ही क्षमा कर चुका था। अन्त में एक दिन अपने पति की गोद में उसकी मृत्यु हो गयी।

बायरन के अधिकांश जीवनी-लेखकों ने (जो बायरन के पक्षपाती भी रहे हैं) लेडी केरोलीन वाले कांड में बायरन का ही दोष ठहराया है। यह कहा जाता है कि लेडी केरोलीन के स्वभाव में कपट छू नहीं गया था, भले ही वह तेज-मिजाज रही है।

बायरन के जीवन में इस तरह के कलंक की घटनाएँ कई रही हैं, जिनमें सबसे भयंकर और सबसे अधिक कुख्यात घटना उसकी पत्नी से सम्बन्धित है।

उसका विवाह अन्नाबेला (पूरा नाम—अन्ना ईसाबेला) मिलबैंक नाम की लड़की से हुआ था। बायरन के समान पलायनवादी पंछी क्यों विवाह के बंधन में बँधने को तैयार हुआ, यह भी एक रहस्यमय घटना है। वास्तविक तथ्य यह है कि उसकी उसी विकृत और प्रतिहिंसात्मक मनोवृत्ति ने उसे विवाह के लिये प्रेरित किया जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। अन्नाबेला मिलबैंक अत्यन्त निष्पाप और सरल-हृदय सुन्दरी लड़की थी। बायरन की जब उससे भेंट हुई तब उसने सोचा था कि दूसरी बहुत-सी स्त्रियों की तरह वह भी तत्काल उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हो उठेगी। पर ऐसा कुछ हुआ नहीं। अन्नाबेला का शुद्ध अन्तःकरण संभवतः यह जान गया था कि इस व्यक्ति का संसर्ग उसके जीवन में घातक सिद्ध होगा। इस कारण बायरन की विरोधी प्रवृत्ति भड़क उठी और उसने निश्चय कर लिया कि वह छल, बल अथवा कौशल से उस 'अनाघ्रात पुष्प' के समान शुद्ध-हृदय तरुणी को प्राप्त करके ही रहेगा।

शांत मनोभाव के किसी एक क्षण में बायरन ने अपने एक मित्र को स्वयं अन्नाबेला के संबंध में लिखा था : "वह लड़की इस कदर निष्पाप है कि मेरे जैसे पापी के उपयुक्त नहीं।" पर यह तो एक क्षणिक मनोवृत्ति की बात थी। इससे वह अपने कूटचक्रों से बाज नहीं आया। एक दिन उसने उस लड़की के आगे विवाह का प्रस्ताव कर ही तो दिया। पर अन्नावेला ने उस समय उसका वह प्रस्ताव साफ शब्दों में ठुकरा दिया। इससे बायरन को स्वभावतः सख्त चोट पहुँची। पर उसने अपना यह मनोभाव बाहर प्रकट न होने दिया वह शिकारी बिल्ली की तरह अपने यथार्थ भाव को चुपचाप छिपाए रहा। कुछ समय बाद मौका पाकर उसने फिर एक बार उसी लड़की के आगे विवाह का प्रस्ताव रखा। इस बार थोड़ी सी झिझक के बाद अन्नावेला ने उसका प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया। इसका कारण था। वह अपने भोले हृदय से जिस युवक को चाहती थी उसके संबंध में उसका विश्वास था कि वह भी उसे चाहता है और उसके साथ विवाह हो जायगा। पर बाद में जब उस युवक ने किसी दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया तो अन्नाबेला को लगा कि अब भी बायरन के प्रस्ताव को ठुकराने से कहीं उसे आजीवन कुंवारी न रहना पड़े। इसलिये वह बायरन के प्रस्ताव पर सम्मत हो गयी।

पर विवाह के दिन ही उसे पता चला कि जिस व्यक्ति से गठबन्धन हुआ है वह भयंकर रूप से खतरनाक आदमी है। विवाह की रस्म-अदायगी हो जाने के बाद जब वह बायरन के साथ एक बन्द गाड़ी पर बैठी, तो बायरन ने किसी परिहास के छल में उससे स्पष्ट शब्दों में कह दिया : "जब मैंने पहले पहल तुम्हारे आगे विवाह का प्रस्ताव रखा था तब यदि तुमने उसे स्वीकार कर लिया होता तो तुम मेरी त्राणकर्त्री बन सकती थीं, पर अब तुम्हें मालूम हो जायगा कि तुमने एक शैतान से विवाह किया है।"

अन्नाबेला का हृदय उन घातक शब्दों को सुन कर धक् से रह गया। वह चुपचाप रुमाल से अपने उमड़ते हुए आंसुओं को पोंछने लगी। वास्तव में वह विवाह दोनों के लिए घोर विनाशकारी सिद्ध हुआ। कुछ समय तक दोनों ने किसी प्रकार विवाहित जीवन का स्वाँग निभाया। पर बाद में स्थिति जटिल से जटिलतर होती चली गयी। बायरन की प्रतिहिंसात्मक भावना केवल अपनी पत्नी के प्रति उदासीनता प्रकट करने तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि वह दूसरी स्त्रियों से प्रायः खुले रूप में प्रेम-सम्बन्ध स्थापित किए रहा। उसकी पत्नी को उन प्रेम-संबंधों का पता यद्यपि लग गया था, तथापि उस विकट कारण के बावजूद वह शांत रही, और प्रकट में उसने किसी प्रकार का कोई विरोध नहीं किया।

पर इसी बीच एक और विचित्र और अविश्वासनीय रहस्य के उद्घाटन ने अन्नाबेला जैसी सरल तथा शांत-स्वभाव नारी को भी विद्रोही बना दिया। यह रहस्य था बायरन का स्वयं अपनी सगी सौतेली बहन आगस्टा से अनुचित संबंध। अन्नाबेला ने एक दिन अकस्मात् इस अनुचित संबंध का प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त कर लिया। वह आतंकित हो उठी और उसके भीतर जीवन में पहली बार विद्रोह का भीषण विस्फोट हुआ। तब से उसने बायरन से एक प्रकार से बोलना छोड़ दिया और दोनों एक दूसरे से खिंचे खिंचे रहने लगे। फलस्वरूप एक दिन दोनों के बीच स्थायी संबंध-विच्छेद हो गया।

इस संबंध-विच्छेद से इंगलैण्ड भर में बड़ी सनसनी फैल गयी। जानकार लोग अन्नाबेला के सरल स्वभाव और सहृदयता से परिचित थे। इसलिए स्वभावतः बायरन को ही चारों ओर से दोषी ठहराया जाने लगा और उसके विरुद्ध निन्दात्मक लेख छपने लगे। पर अभी तक इस

रहस्य से कोई परिचित नहीं था कि वास्तव में किस कारण से दोनों का सम्बन्ध-विच्छेद हुआ है। बायरन की पत्नी वर्षों तक उस गुप्त रहस्य को अपने ही मन में छिपाए रही। बायरन की मृत्यु के कई वर्ष बाद "अंकल टाम्स केबिन' (टाम काका की कुटिया) की विश्व-विख्यात लेखिका बीचर स्टो ने अन्ना बेला से भेंट की और उससे अपने पति से सम्बन्ध-विच्छेद का वास्तविक कारण उद्घाटित करने के लिए बहुत आग्रह किया। तब जाकर अन्ना बेला ने बताया कि बायरन का अपनी सगी सौतेली बहन आगस्टा से किस प्रकार का सम्बन्ध था। बाद में खोजियों ने इस अवैध सम्बन्ध की सच्चाई की पुष्टि में बहुत से प्रमाण बायरन के पत्रों और कविताओं से भी खोज निकाले। इस रहस्योदघाटन से बड़ा भारी तहलका साहित्य-संसार में मच गया था।

वास्तव में बायरन के विवाहित-जीवन की कहानी घोर कालिमामय है। उसके स्वपक्षी जीवनी-लेखकों के लाख प्रयत्नों के बावजूद भी यह कालिमा तनिक भी नहीं धुल पायी है।

पत्नी से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने के बाद बायरन को जो बदनामी फैली उसके फलस्वरूप उसके लिए इंगलैन्ड में रहना असम्भव हो गया और वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ पर उसकी विकृत और दूषित मनोवृत्ति का अंत यहीं पर न हुआ। विदेशों में भी उसने अपने व्यभिचारमूलक सम्बन्ध जारी रखे। अपनी इस प्रवास यात्रा में उसने कई स्त्रियों का जीवन बरबाद किया, जिनमें क्लेयर नाम की लड़की की गाथा अत्यन्त मार्मिक और हृदय-द्रावक है।

क्लेयर प्रायः उस युग की सभी शिक्षिता अँग्रेज लड़कियों की तरह अत्यन्त भावुक थी और शेली के घनिष्ठ सम्पर्क में रहने के कारण उसके विचारों से प्रभावित होकर स्वतंत्र-प्रकृति हो उठी थी। यद्यपि वह बराबर

शेली और उसकी पत्नी मेरी के ही साथ रहती थी, तथापि शेली से उसका कोई अनुचित सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ था। शेली उसे अपनी बहन की तरह मानता था (यद्यपि कुछ लेखकों ने इस सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया है ; और क्लेयर उसे चाहने पर भी विवश थी, क्योंकि जानती थी कि शेली उसकी खातिर मेरी को नहीं त्याग सकता। साथ ही वह अपना भावुक हृदय किसी कवि को अर्पित करने के लिए अत्यन्त अधीर हो उठी थी। इसलिए उसने बायरन से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय किया। बायरन को पहले उसी ने प्रेम पत्र लिखा। बायरन ने उसके पहले उसे देखा तक न था। क्लेयर ने एक पत्र द्वारा उससे एकांत में मिल कर ' किसी एक विशेष महत्व के विषय'' पर बातें करने का अग्रह किया। इस प्रकार दोनों का एक दूसरे से परिचय हुआ। धीरे धीरे दोनों में घनिष्ठता हो गयी। कुछ समय बाद क्लेयर इंगलैन्ड छोड़ कर परिवार के साथ जेनेवा चली गयी। बायरन भी वहाँ आ पहुँचा। दोनों की इस घनिष्ठता के फलस्वरूप अविवाहित अवस्था में ही क्लेयर ने एक लड़की को जन्म दिया, जिसका नाम एलेग्रा रखा गया। लोगों से कहा जाने लगा कि वह लड़की किसी दूसरे की है और क्लेयर केवल उसकी दाई का काम करती है।

इधर बायरन अपने जन्मगत स्वभाव के अनुसार क्लेयर से उकता गया और उसे छोड़कर वेनिस चला गया। वहाँ वह इटालियन लड़कियों से प्रेम-सबंध स्थापित करने लगा। मारियाना सेगाती नाम की एक दर्जी की लड़की और मार्गारिती कोन्यो नाम की एक नानबाई की लड़की से प्रायः साथ उसका प्रेम चलता रहा। शेली ने उस समय अपने एक पत्र में लिखा था कि बायरन के नाववाले सड़कों में आवारा फिरने वाली जो भी लड़कियाँ पकड़ लेते हैं बायरन उन्हीं से अनुचित सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। इन लड़कियों में मार्गारिता कोन्यी बड़ी तेज-मिजाज थी। वह

बायरन को हृदय से चाहती थी, पर यह देखकर उसकी ईर्ष्या का ठिकाना नहीं था कि वह साथ-साथ दूसरी लड़कियों से भी प्रेम करता रहता है। एक दिन उसकी ईर्ष्या की ज्वाला इस कदर भड़क उठी कि वह एक खंजर से बायरन को मारने दौड़ी। बाद में स्वयं उसका हाथ रुक गया और वह रोती हुई बायरन के गले से लिपट गयी।

क्लेयर के सुसंस्कृत और उच्चकोटि के प्रेम को ठुकरा कर बायरन इस प्रकार घृणित व्यभिचार की पंकिलता में डूबा हुआ था। शेली को क्लेयर और उसकी बच्ची के लिये बहुत दुःख हो रहा था। इसलिए एक दिन वह एलेग्रा (क्लेयर की लड़की) को लेकर वेनिस जा पहुचा। बायरन ने एलेग्रा को एक आश्रम में पहुँचा दिया। क्लेयर उन दिनों फ्लोरेंस में थी। उसे इस बात का बहुत दुःख हुआ, और उसने बायरन को एक विष-बुझा पत्र भेजा, जो कि उसकी स्थिति में स्वाभाविक था। बायरन उस पत्र से और चिढ़ गया। इन सब बातों का फल यह हुआ कि लड़की एक दिन आश्रम में पाँच वर्ष की अवस्था में, अपराधी माँ-बाप की देख-रेख और परिचर्या के बिना मर गयी। बायरन निकट रहते हुए भी कभी एक दिन के लिए भी आश्रम में नहीं गया था। और क्लेयर तब बहुत दूर फ्लोरेंस में थी।

इस घटना से बायरन की निर्दयता, निष्ठुरता और कुटिलता की पराकाष्ठा का परिचय पाकर क्लेयर को जो धक्का पहुंचा उसे वह मृत्यु-पर्यन्त नहीं भूली। उसने जीवन में कभी विवाह नहीं किया। अन्त तक वह अपने परिचितों को यह विश्वास दिलाती रही कि बायरन से वह हार्दिक घृणा करती आयी है और शेली ही उसके जीवन का एकमात्र आदर्श रहा है, और केवल उसी को उसने सच्चे हृदय से प्यार किया है।

बायरन के पतन की इस प्रकार की और भी बहुत सी घटनाएँ हैं, जिनका उल्लेख इस छोटे लेख में नहीं हो सकता। उसकी मृत्यु के बाद बड़े-

बड़े कवियों और आलोचकों ने उसकी प्रतिभा की प्रशंसा की है, जिनमें महाकवि गेटे भी शामिल हैं, पर आज का कलापारखी तो उसकी काव्य-प्रतिभा में भी दोष पाता है, और उसके चरित्र की कलंक कालिमा तो सदा के लिए अमिट है ही।

श्रीमती एनी बीसेन्ट और बर्नार्ड शा

श्रीमती एनी बीसेन्ट की प्रतिभा ऐसी अगाध, विराट और व्यापक रही है और उसकी गति ऐसी विचित्र और बहुमुखी धाराओं से होकर प्रवाहित हुई है कि उनके जीवन के किसी एक विशेष पहलू को लेकर बिचार करने से उनके सम्बन्ध में भ्रम फैलने का खतरा है। भारत में उनके परवर्ती जीवन का दीर्घकाल बीता है। यहाँ के जीवन में उन्होंने अपने को इस कदर खपा लिया था कि हम भारतीयों में से बहुतों के ध्यान ही में यह बात नहीं आती थी कि वह जन्म से एक आयरिश महिला थीं, इंगलैंड में उनके जीवन का प्रारम्भिक विकास हुआ और वहीं उस विकास ने परिपक्वता प्राप्त की। उनके जीवन का कितना अधिक महत्वपूर्ण भाग इंगलैंड में बीता और वहाँ जीवन के किन महत्वपूर्ण भीतरी और बाहरी चक्रों में उलझती हुई वे निरन्तर अपने प्रबल पराक्रम द्वारा अपने और दूसरों के जीवन के जटिल जालों को सुलझाने के महान प्रयत्नों में व्यस्त रहीं, यदि हम इन सब बातों को भुला देंगे, और केवल उनके उस जीवन को महत्व देंगे जो उन्होंने भारत में गहन आध्यात्मिक तत्वों के अध्ययन, मनन और प्रचार में तथा यहाँ के राजनीतिक जीवन में भाग लेकर व्यतीत किया, तो हम उनकी प्रतिभा के महत्व को ठीक से समझने में पूर्णतः असफल रहेंगे।

मैं जब एनी बीसेन्ट के जीवन के विविध पहलुओं के अध्ययन के बिचार से उनके जीवन के सम्बन्ध में लिखी गई विविध पुस्तकों के अध्ययन के लिए उत्सुक हो रहा था तो श्रीयुत श्रीप्रकाश लिखित एक

महत्त्वपूर्ण अँगरेजी पुस्तक मेरे हाथ लगी। पुस्तक में यद्यपि लेखक ने श्रीमती बीसेंट के निकट संपर्क में आने के फलस्वरूप उनके जीवन के विषय में अपने विविध अनुभवों और मंतव्यों का प्रकाशन किया था, और एक दृष्टि से वह पुस्तक यद्यपि बहुत उपयोगी थी, तथापि उससे मुझे निराशा ही हुई। उसमें उनके जीवन के केवल उसी भाग पर प्रकाश डाला गया था जो उन्होंने 'थीओसोफिस्ट' बनने के बाद अधिकांशतः भारत में बिताया था। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि उनके जीवन का यह भाग अपने आपमें बहुत महत्वपूर्ण था। पर फिर भी जब तक उनको उनके पूर्व के विस्तृत जीवन की पृष्ठभूमि में न रखा जाय तब तक उनके जीवन का सारा चित्र अधूरा और एकतरफा रह जाता है।

एनी बीसेंट लुटपन ही से अपनी प्रबुद्ध प्रतिभा के प्रकाश से घरवालों को अशांत किये रहती थीं। जिस विक्टोरियन युग में उनका जन्म और प्रारम्भिक विकास हुआ था उसमें किसी भी लड़की की बौद्धिक प्रतिभा और मौलिक चिन्तन-प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना माँ-बाप घोर पाप और जघन्य अपराध समझते थे। एनी के भीतर जो भूकम्प के बीज विविध बौद्धिक तत्त्वों के पारस्परिक संघर्ष से धीरे-धीरे एकत्रित हो रहे थे, उन्हें वह विक्टोरियन समाज के रूढ़िगत संस्कारों की छाया के नीचे कुछ समय तक बलपूर्वक दबाते रहने का प्रयत्न करती रहीं। वे सरसक समाज से आकस्मिक विद्रोह करने की अपनी निरंतर उभरती हुई प्रवृत्ति को ठंढा करते रहने की चेष्टा करती चली गईं। उनके इसी प्रयत्न का फल था कि माँ-बाप को पसंद एक व्यक्ति से उन्होंने विवाह कर लिया।

यद्यपि उनका तीव्र प्रतिभाशाली, कर्मठ और पौरुष स्वभाव गृहस्थ जीवन के उपयुक्त नहीं था, तथापि वह अपनी इस विरोधी प्रवृत्ति को

बार बार दबाती रहीं। वह बच्चों की माता भी बन गयीं। तथापि उन्हें संकीर्ण गार्हस्थिक और सामाजिक जीवन की बद्धता में तनिक भी शांति नहीं मिल रही थी और उनका दम जैसे घुटा जा रहा था। उन्हें अपनी रुद्ध प्रतिभा के विकास के लिये मुक्त वातावरण की आवश्यकता थी। अन्त में बहुत दिनों तक दबी हुई विरोधी प्रवृत्तियों का विस्फोट एक दिन हो ही गया। भूकंप के उस प्रबल धक्के का प्रतिरोध वह अधिक न कर सकीं और गृहस्थ जीवन की संकीर्ण चहारदीवारी को तोड़-फोड़ कर वह बाहर निकल पड़ीं।

उस युग में किसी नारी की इस प्रकार की साहसिकता ब्रिटिश समाज की दृष्टि में किसी प्रकार भी क्षम्य नहीं थी और वह निपट निर्लज्ज उच्छृं-खलता समझी जाती थी। फलतः श्रीमती बीसेन्ट पर समाज के कड़े और कटु व्यंगों की बौछार होने लगी। उनसे उसके अनुभूतिशील हृदय को पीड़ा अवश्य हुई, पर उसके कारण वह अपने निर्धारित पथ से एक इञ्च भी विमुख नहीं हुईं।

तब से उन्होंने सार्वजनिक जीवन के विविध क्षेत्रों में भाग लेना आरम्भ कर दिया। उनकी प्रबल बौद्धिकमयी तीव्र प्रतिभा दिन पर दिन अधिकाधिक चमकती गई। सार्वजनिक क्षेत्र में कूदते ही उन्होंने दलितों, पीड़ितों और शोषितों के उद्धार के लिये अपने जीवन को लगाने का काम आरम्भ कर दिया। विक्टोरियन युग में ब्रिटिश पूँजीवाद पूरे जोरों पर था और मजदूरों का प्रश्न दिन पर दिन जटिल से जटिलतर रूप धारण करता चला जाता था। एनी बीसेन्ट ने देखा कि उससे अच्छा और कोई क्षेत्र उन्हें अपने जीवन की उपयोगिता के लिये नहीं मिल सकता। उन्होंने पूर्णतः उसमें अपने को खपा देना चाहा। जगह जगह उन्होंने मजदूरों

का संगठन किया, सार्वजनिक सभाओं में अपनी जादूभरी वाग्मिता का परिचय देते हुए धारा-प्रवाह भाषण दिये, और हजारों—बल्कि लाखों—आदमियों को अपने विचारों की ओर खींच लिया। उस युग में उस प्रकार के प्रगतिशील प्रयत्नों में आश्चर्यजनक विजय पा जाना वास्तव में एक अपूर्व कल्पित बात थी। इससे पता चलता है कि किस तीव्र और आंतरिक लगन से प्रेरित होकर श्रीमती बीसेन्ट अपने विचारों और भाषण-कला के चमत्कारों से जनता को आंदोलित कर पाई थीं।

अपने समाजवादी विचारों के प्रचार के सिलसिले में बर्नार्ड शा से उनका परिचय हुआ। बर्नार्ड शा तब एक समाजवादी समिति—फेबियन सोसाइटी—के सदस्य थे और उसके तत्वावधान में अक्सर समाजवाद पर भाषण दिया करते थे। पर शा और श्रीमती बीसेन्ट के स्वभाव में बहुत बड़ा अन्तर था—बल्कि कहीं कहीं तो मूलगत वैषम्य जान पड़ता था। शा अत्यन्त महत्वपूर्ण और गम्भीर विषयों के प्रतिपादन में परिहास और व्यंगपूर्ण चुटकुलों का सहारा लिये बिना एक पग नहीं चल पाते थे। इसके विपरीत एनी बीसेन्ट साधारण महत्व की बात को भी अत्यन्त गम्भीर रूप से ग्रहण किए बिना नहीं रह पाती थी। वह गम्भीर ही रूप से विचार ग्रहण करती थीं और गम्भीर रूप से विचार भी।

इसलिये प्रारम्भ में शा के स्वभाव की परिहास प्रियता श्रीमती बीसेन्ट को ओछेपन से भरी हुई जान पड़ी और वह शा से एक प्रकार से विमुख सी रहीं। पर बाद में जब धीरे-धीरे शा की विचार-धारा का दूसरा पहलू भी उनके सामने स्पष्ट होता चला गया तब वह उनके प्रति आकर्षित होने लगीं। शा तो प्रारंभ ही से एनी बीसेन्ट की असाधारण प्रतिभा, अपूर्व वाग्मिता और आश्चर्यजनक कर्मठता के कारण उनकी ओर खिंच चुके थे। पर वह श्रीमती बीसेन्ट के रूखे स्वभाव के कारण उनसे बहुत डरते थे और अधिक घनिष्ठता बढ़ाने का साहस उन्हें नहीं होता था।

श्रीमती एनी बीसेन्ट और बर्नार्ड शा

एक दिन 'डायलेक्टिकल सोसाइटी' के तत्वाधान में शा का समाजवाद पर भाषण होने वाला था। यह भी घोषित किया गया था कि एनी बीसेन्ट भी उस दिन की सभा की कार्रवाई में भाग लेंगी। इससे शा बहुत घबरा उठे। उन्हें यह भय था कि चूँकि एनी बीसेन्ट उनसे संतुष्ट नहीं हैं, इसलिए वह उनके भाषण की एक एक वाक्य की धज्जियाँ उड़ा कर उनके सारे विचारों को उपहासास्पद सिद्ध कर देंगी। श्रीमती बीसेन्ट की अद्भुत वाक् शक्ति का परिचय केवल शा को नहीं था, बल्कि उस समय वह भाषण कला में यूरोप भर में सर्वश्रेष्ठ मानी जाने लगी थीं। एक अनुभवी का कहना है कि यदि वह रात के समय इस बात पर अड़ जातीं कि वह रात नहीं बल्कि दिन है, और तब सारे संसार को अपनी झंकृत वाणी में इस बात की चुनौती देतीं कि उनके उस मत को गलत सिद्ध करें तब उनके धारा-प्रवाही भाषण और आश्चर्यजनक तर्क-प्रणाली के फलस्वरूप जनता यह विश्वास करने के लिये उत्सुक हो उठती कि सचमुच वह रात दिन ही का दूसरा रूप है। इस कारण शा ने जब सभा भवन में प्रवेश किया तब वह बहुत घबराये हुए थे।

कुछ भी हो, शा ने किसी तरह अपना भाषण समाप्त किया। वह जब बैठ गए तब सभी को इस बात की पूरी आशा थी कि श्रीमती बीसेन्ट उस विवादात्मक सभा में विरोधी पक्ष की ओर से भाषण देने के लिये खड़ी होंगी, पर सब के— और विशेष कर शा के— आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब वह खड़ी नहीं हुईं। भाषण का विरोध किसी एक दूसरे व्यक्ति ने किया। उस व्यक्ति के बैठ जाने पर श्रीमती बीसेन्ट उठीं। उन्होंने शा के विरोधी के तर्कों को एक-एक करके अत्यन्त निर्ममता से काट कर उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, और इस प्रकार शा का पक्ष-समर्थन किया। शा के आश्चर्य और हर्ष का ठिकाना न रहा। इस बात के लिए वह कतई

तैयार नहीं थे। यह घटना १८८५ के बसन्त-काल की है। क्या एनी बीसेन्ट के हृदय परिवर्तन में बसन्त-काल का कुछ हाथ था ?

तब से दोनों एक दूसरे के निकट से निकटतर आते चले गए। दोनों को एक दूसरे की प्रतिभा की विशेषताओं का परिचय घनिष्ठ रूप से मिलता चला गया—यद्यपि अभी दोनों को बहुत कुछ जानना शेष था।

एनी बीसेन्ट भी फेबियन समाजवादी सभा की सदस्या हो गईं। वह अक्सर शा को अपने यहाँ निमंत्रित करती थीं। दोनों एकांत में कभी समाजवाद के विषय पर बातें करते, और कभी संगीत द्वारा एक दूसरे का मनोरंजन करते। दोनों यौवन की परिणत अवस्था को प्राप्त हो चुके थे, तथापि अभी जीवन की बहुत सी उमंगें दोनों के भीतर भरी पड़ी थीं। दोनों के जीवन के वे दिन जिस अपूर्व उल्लास और मादक उच्छ्वास में बीत रहे थे उसका अनुभव उनमें से किसी ने भी पहले नहीं किया था, यद्यपि दोनों तब तक जीवन के बहुत से गहरे कुओं का पानी पी चुके थे। एनी बीसेन्ट का उस समय ३८ वां वर्ष चल रहा था और शा ३० वां वर्ष पार कर चुके थे।

एनी बीसेन्ट उन दिनों 'आवर कार्नर' नामक एक पत्रिका का सम्पादन कर रही थीं। पहले वह कुछ समय तक ब्रेडला के प्रभाव में आकर उस पत्र द्वारा नास्तिकवाद का प्रचार कर चुकीं थीं, अब शा के निकट सम्पर्क में आकर समाजवाद के प्रचार के लिए उन्होंने उसके कालम मुक्त कर दिये थे। शा के उपन्यासों को भी वह उसमें धारावाहिक रूप से निकालने लगीं। पर चूँकि पत्रिका मुख्यतः समाजवादी बन चुकी थी, इसलिए उसके ग्राहक बहुत कम थे—उन दिनों इंगलैंड में समाजवाद के प्रचारकों को जनता अधिक नहीं पूछती थी। पर पत्रिका निकलती ही रही। शा को एनी बीसेन्ट के पत्र की आर्थिक कठिनाई के संबंध में कोई सूचना

नहीं थी और शा की जो रचनाएं उसमें छपती थीं उनका पुरस्कार वह स्वयं अपनी गांठ से उन्हें देती रहीं। बाद में जब शा को स्थिति की यथार्थता का पता चला तो उन्होंने पुरस्कार लेने से कतई इनकार कर दिया।

किसी भी सभा या समिति में भाषण देना होता तो दोनों साथ-साथ जाते। शा अपने हाथ में सब समय श्रीमती बीसेन्ट का 'बैग' पकड़े रहते, और परिहास के तौर पर सब समय यह शिकायत करते रहते कि वह बहुत भारी है। साथ ही यह भी पूछते रहते कि इतने भारी 'बैग' को रखने में श्रीमती बीसेन्ट को क्या सुख मिलता है ? इस तरह की बातों से वह चिढ़ जातीं और बार-बार 'बैग' को शा के हाथ से छीनने का प्रयत्न करती रहतीं, यद्यपि असफल होकर रह जातीं।

पर इस तरह की छोटी-मोटी खीझों के फलस्वरूप दोनों एक दूसरे के और अधिक निकट आते गए, इसके बाद एक घटना घटी।

सन् १८८६ में व्यापार में मन्दी आने से बहुत से मजदूर बेकार हो गए। मजदूरों से सहानुभूति रखने वाली संस्थाओं ने उस बेकारी के विरुद्ध अन्दोलन करना शुरू किया। १८८६ के फरवरी मास में एक दिन बेकारों का एक विराट जुलूस निकाला गया। पुलिस पूरी ताकत से विरोध करने के लिये तैयार खड़ी थी। इस जुलूस में कई नामी कार्यकर्ता गिरफ्तार हुए, पर बाद में छोड़ दिये गये। इससे आन्दोलन ने और अधिक जोर पकड़ा। कई महीनों तक अन्दोलन चलता रहा। सरकार भी सख्ती करने पर तुली हुई थी। समाजवादी कार्यकर्ताओ ने जुलूस निकालने और भाषण देने की स्वतंत्रता पर जोर दिया। कानून की एक विशेष धारा के अनुसार इन दोनों पर रोक लगा दी गई थी। शा ने उस धारा के दुरुपयोग का विरोध करने के उद्देश्य से अपना दल संगठित

किया। १३ नवम्बर, १८८७ को ट्रेफालगर स्क्वायर में एक विराट सभा करने की घोषणा की गई। जुलूस निकला। शा, एनी बीसेंट तथा अन्य प्रमुख समाजवादी उसमें सम्मिलित थे। शा ने जनता से कहा कि वे लोग अनुशासन के साथ चलें और अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहें। एनी बीसेंट को शा ने समझाया कि उन्हें पुलिस के संघर्ष में आने से अपने को बचाते रहना चाहिये और वह जुलूस के साथ न चलें। पर श्रीमती बीसेंट का जोश ठंडा करने की शक्ति एक शा में तो क्या, हजार शाओं में भी न थी। वह जुलूस के साथ निर्भीक भाव से आगे बढ़ती चली गयीं।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर अकस्मात् देखा गया कि जुलूस के सामने वाले भाग में बड़े जोरों से भगदड़ मच गई है, पुलिस डंडों से लोगों को भगा रही थी। श्रीमती बीसेंट शा से यह आशा कर रही थीं कि वह इस अवसर पर वीरता का परिचय देंगे। पर शा ने कोई वीरता न दिखाई—ऐसे अवसरों के लिये वीरता उनके स्वाभाव में ही नहीं थी। शा ने केवल इतना ही किया कि वह दौड़ कर भगे नहीं, चुपचाप, धीरे से एक किनारे से खिसक गए। श्रीमती बीसेंट से भी उन्होंने अलग हट जाने को कहा, पर शा उनके स्वभाव से अभी पूरी तरह परिचित नहीं हो पाए थे। श्रीमती बीसेंट शा की ओर अत्यन्त अवज्ञा—बल्कि घृणा—से देखकर अपने निश्चित मार्ग में दृढ़ पगों से चलती रहीं। उनके साथ वाला जुलूस भी बिना किसी हिचक के आगे बढ़ता रहा,

जब शा निर्दिष्ट स्क्वायर पर पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि वहाँ घुड़सवार पुलिस पूरी तैयारी के साथ पहुंची हुई है। वह अपने जान केवल तमाशबीन की हैसियत से एक अलग कोने में जाना चाहते थे, पर पुलिस के कुछ आदमियों के संघर्ष में वह आ ही गये। उन्होंने माफी मांग

ली, उन्हें छोड़ दिया गया। वास्तव में शा की यह कायरता उनके जीवन के इतिहास में अमिट कलंक की रेखा आंकती है। स्वयं जुलूस का संगठन करने में अग्रणी बनकर वह पुलिस से माफी माँग कर, तमाशबीन बनकर अलग जा खड़े होंगे, उनसे ऐसी आशा उनके किसी भी सहकर्मी ने नहीं की थी।

उनके कई सहकर्मियों की पुलिस से मुठभेड़ हुई और वे अन्त तक पूरी ताकत से—केवल अपने निरस्त्र हाथों से—पुलिस के आदमियों से लड़ते रहे। कइयों को सख्त चोटें आयीं. विख्यात समाजवादी लेखक एडवर्ड कार्पेंटर को भी चोट आई। श्रीमती बीसेंट ने भी वीरता से पुलिस के आदमियों से हाथापाई की। उन्हें भी चोट आई। पर उनका उत्साह इस घटना से तनिक भी ठंढा न पड़ा, और वह इस बात पर बहुत अधिक जोर देने लगीं कि अगले इतवार को फिर इसी प्रकार का जुलूस निकाल कर पुलिस की ज्यादतियों का सामना किया जाय।

यह घटना "खूनी इतवार की घटना" के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी है। पुलिस के प्रति जनता का क्रोध उमड़ उठा था। जनता के इस मनोभाव से बल पाकर एनी बीसेंट ने कैदियों की तरफ से अदालत में लड़ने के लिये चंदा इकट्ठा किया, संवादपत्रों के सम्पादकों के पास जाकर उन्हें कैदियों के पक्ष में अवाज उठाते रहने के लिये राजी किया, स्वयं पुलिस अदालत में जाकर गवाही दी, मैजिस्ट्रेट को अपने भाषणों से चकित और पुलिस को स्तंभित कर दिया। इसी सिलसिले में उन्होंने 'लिंक' (शृंखला) नामक एक नये समाजवादी पत्र के प्रकाशन का भी आयोजन कर डाला। उनके इस प्रबल पराक्रम और कर्मठता को देखकर उनके पुरुष सहकर्मी लज्जा से सिर नीचा किये रहे, और शा तो बहुत ही शर्मिंदा हो रहे थे।

दूसरे रविवार को 'स्क्वायर' में फिर जलूस निकाल कर जाना चाहिये या नहीं इस विषय को लेकर बड़ा विवाद चला। एनी बीसेंट ने जुलूस निकाले जाने के पक्ष एक प्रस्ताव पेश करते हुए ऐसा जबर्दस्त भाषण दिया कि श्रोताओं में से किसी को भी विरोध करने की हिम्मत न पड़ी। सारी सभा में कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा। बाद में शा खड़े हुए। यद्यपि उन्हें एनी बीसेंट की ओर देखने का साहस नहीं हुआ, तथापि उनकी स्वभावगत कायरता ने फिर उन्हें एक बार एनी बीसेंट के उत्साह को ठंडा करने पर मजबूर किया। उन्होंने कहा, पिछली बार तो पुलिस ने केवल डंडों का ही प्रयोग किया था, पर अबकी बार वह बंदूकों और तोपों को भी काम में लावेगी, और चूंकि जनता अभी इन अस्त्रों का सामना करने के लिये तैयार नहीं है, इसलिये यह प्रस्ताव अभी स्वीकृत न किया जाय। शा के भाषण ने उनके दूसरे सहकर्मियों को भी भयभीत कर दिया, और फलतः श्रीमती बीसेंट का प्रस्ताव गिर गया।

इस घटना से श्रीमती बीसेंट को बड़ा धक्का पहुँचा और शा के विरुद्ध उनके मन में कुछ विरक्ति का सा भाव जमने लगा। फिर भी दोनों का मिलना जुलना पूर्ववत जारी रहा। शा उन्हें निरंतर प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते रहे। कुछ समय बीत जाने पर जब शा ने देखा कि श्रीमती बीसेंट के हृदय का घाव बहुत कुछ भर गया है और उनकी विरक्ति फिर प्रेम में बदलने लगी है, तब एक दिन उन्होंने एकान्त में मौका पाकर यह प्रस्ताव श्रीमती बीसेंट के आगे रखा कि अब उन दोनों की घनिष्ठता एक निश्चित आधार पर प्रतिष्ठित होकर एक नये और गम्भीर सम्बन्ध में परिणत हो जानी चाहिये।

श्रीमती बीसेंट वास्तव में शा की सब हीनताओं को भूलकर उन्हें हृदय से चाहने लगी थीं। वह बहुत अधिक भावुक प्रकृति की महिला

नहीं थीं, तथापि वह यह अनुभव करने लगीं जैसे शा से वास्तविक प्रेम-सम्बन्ध स्थापित किये बिना उनका जीवन ही निष्फल हो जावेगा। वह प्रतिदिन संध्या को शा की प्रतीक्षा में विकल रहतीं और जिस दिन शा न आ पाते उस दिन उनकी निराशा का ठिकाना न रहता।

अंत में जब शा ने उक्त प्रस्ताव उनके आगे रखा तब उन्होंने अत्यन्त गम्भीर रूप से उस पर विचार किया। उनके पति अभी जीवित थे, इसलिए वह शा से विवाह नहीं कर सकती थीं। वह सोचने लगीं कि उस जटिल स्थिति में क्या किया जाय? शा से विवाह भी नहीं हो सकता, और उनसे अलग रहना भी कठिन है। अन्त में बहुत सोचने विचारने के बाद उन्होंने आपसी तौर से एक शर्तनामा तैयार किया और उसे शा के आगे हस्ताक्षर के लिए रखते हुए कहा: "इन शर्तों पर मैं तुम्हारे साथ पत्नी का सा जीवन बिताने को तैयार हूँ। पहले तुम्हें इस शर्तनामे पर हस्ताक्षर करने होंगे।"

शा ने शर्तों को पढ़ा। वे उन्हें बहुत कड़ी मालूम हुईं। उन्होंने उचक कर कहा: "ये शर्तें तो किसी भी गिरजे में विवाह के समय की जानेवाली शपथों से भी कड़ी हैं।"

पर एनी बीसेंट अपने सुदृढ़ स्वभाव के अनुसार अपनी बात पर अड़ी रहीं। इधर शा भी एक स्वतंत्रता-प्रेमी कलाकार की तरह उन शर्तों से बँधने के लिये किसी प्रकार भी तैयार नहीं होते थे। फल यह हुआ कि दोनों का निगूढ़ हार्दिक संबंध शर्तनामे की चट्टान पर टकरा कर चकनाचूर हो गया। श्रीमती बीसेंट ने अपने वे सब प्रेम-पत्र वापस मांगे जो उन्होंने समय समय पर शा को लिखे थे। शा ने अनिच्छा से सब पत्रों को बटोरकर उन्हें दे दिया। श्रीमती बीसेंट ने भी शा के सभी प्रेम-पत्र उन्हें वापस कर दिये। शा को इस बात से बड़ा धक्का पहुँचा। उन्होंने आश्चर्य से

प्रायः चिल्लाकर कहा : "यह क्या ! तुम क्या मेरे पत्रों से भी इस कदर घृणा करने लगी हो ?"!

अपने आंसुओं को बरबस पी जाने की चेष्टा करते हुए रुंधे हुए गले से श्रीमती बीसेंट ने कहा : "मुझे उनकी आवश्यकता नहीं है।" बस, उसी दिन से दोनों के बीच सदा के लिये सम्बन्ध विच्छेद हो गया।

इस घटना के कुछ ही समय बाद श्रीमती बीसेंट के हाथ हेलेना पेट्रोवा ब्लावात्सकी नाम की एक रूसी महिला लिखित 'दी सीक्रेट डाक्ट्रिन' (रहस्यात्मक धर्मतत्व) नामक एक पुस्तक लग गयी। उसे पढ़ कर अपनी निराशा की स्थिति में उन की आत्मा का ऐसा उद्बोधन हुआ कि वह और सब कुछ भूल गयीं। तब से वह पक्की थिओसोफिस्ट बन गयीं और आजीवन बनी रहीं।

एक दिन शा ने 'स्टार' नामक पत्र के आफिस में एनी बीसेंट के एक लेख का प्रूफ पढ़ा। लेख का शर्षिक था : 'मैं थियोसोफिस्ट क्यों बनी'। शा तिलमिला उठे। वह उसी समय श्रीमती बीसेंट के पास दौड़े चले गए और उन्हें बताया कि मादाम ब्लावात्सकी के सारे पाखंड की पोल 'साइकिल सोसाइटी' द्वारा खोली जा चुकी है, और उसका सारा धर्मवाद एक ढोंग है। पर श्रीमती बीसेंट पर इस तरह की बातों का कोई असर नहीं पड़ा। अन्त में शा ने अपने आखिरी तुरुप की चाल चली। कहा : "तुम महात्माओं की खोज के लिये तिब्बत क्यों जाना चाहती हो? तुम्हारा महात्मा तो तुम्हारे पास ही मौजूद है। मैं हूँ तुम्हारा महात्मा!"

पर शा के प्रति श्रीमती बीसेंट का प्रेम-सम्बन्धी उत्साह अब ठंढा पड़ चुका था, इसलिये शा की इस अन्तिम बात का भी कोई प्रभाव उन पर

न पड़ा। उसके बाद श्रीमती बीसेन्ट ने भारत में आकर जो कर्मयोगिनी का जीवन बिताया उससे अधिकांश पाठक परिचित होंगे।

पूरे युग के बाद बर्नार्ड शा जब एक बार बम्बई उतरे थे तो वहाँ श्रीमती बीसेंट के दत्तक पुत्र श्री कृष्णमूर्ति से उनकी भेंट हुई थी, जिन्हें श्रीमती बीसेंट ने एक नये मसीहा के रूप में प्रचारित किया था। शा ने उनसे पूछा, : 'क्या तुम अक्सर श्रीमती बीसेंट से मिलते रहते हो? "उत्तर मिला : "प्रायः प्रति दिन"। "वह इस समय कैसी हैं"? "अच्छी ही हैं, पर अब उनकी अवस्था इतनी अधिक हो गई है कि वह किसी भी बात पर सिलसिलेवार नहीं सोच पातीं।" "वह सदा ऐसी ही रही हैं", शा ने कहा।

शा का कहना है कि प्रचंड प्रतिभाशालिनी होने पर भी श्रीमती बीसेंट जीवन में अधिक समय तक कभी किसी एक सिद्धांत पर दृढ़ नहीं रहीं। कभी नास्तिकवाद पर विश्वास करती रहीं, कभी समाजवाद पर और कभी थिओसोफी पर। किंतु सब कुछ होने पर भी शा के मन में बराबर श्रीमती बीसेंट के लिये एक कोमल स्थान बना रहा, यह स्वीकारोक्ति उन्होंने अपने घनिष्ठ मित्रों से की थीं।

शरत्चंद्र का प्रेम-जीवन

शरत्चंद्र के प्रेम-जीवन के संबंध में लोगों के मन में बड़ी ही विचित्र और भ्रांत धारणाएं बनी हुई हैं। उनकी कोई प्रामाणिक जीवनी अभी तक प्रकाशित न होने के कारण उनके प्रेमी पाठक साधारणतः उनकी रचनाएं पढ़ कर अनुमान लगा लेते हैं कि उनका जीवन भी उनके दुर्बल-चरित्र नायकों की ही तरह सस्ते किस्म की भावुकता से पूर्ण रूमानी में बीता होगा। उनके कुछ उपन्यासों और कहानियों में अभागिनी वेश्याओं का चरित्र चित्रित हुआ देखकर बहुत से पाठक यह समझ बैठते हैं कि शरत्चंद्र पक्के वेश्यागामी रहे होंगे! पाठकों का कुछ विशेष दोष भी नहीं है, जब कि कुछ उत्तरदायित्वहीन, सनसनी-परस्त लेखकों ने शरत्चंद्र की 'प्रामाणिक जीवनी' के नाम पर विविध कल्पित नारियों के साथ उनका 'प्रेम-संबंध' बता कर उन मिथ्या-प्रचारित 'प्रेम-संबंधों' का विस्तृत विवरण छाप डाला है। एक लेखक ने तो उनके प्रत्येक उपन्यास की नायिका को उनके यथार्थ जीवन से संबंधित यथार्थ और जीवित नारी प्रमाणित करने का प्रयत्न तक किया है। और प्रत्येक को उनकी वास्तविक प्रेयसी ठहराया है! कहना न होगा कि ये सब निराधार अनुमान उन उत्तरदायित्वहीन लेखकों के हैं जिन्हें न तो व्यक्तिगत रूप से शरत्चंद्र के स्वभाव और चरित्र की विशेषता का यथार्थ ज्ञान रहा है न जिनमें उनके उपन्यासों में निहित गंभीर कलात्मक तत्वों और निगूढ़ आदर्शों को समुचित रूप से समझ सकने की योग्यता वर्तमान है।

नारी के संबंध में शरत् का दृष्टिकोण उनके उपन्यासों और कहानियों में सुस्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुआ है। अपने वास्तविक जीवन में भी

वह बराबर उसी दृष्टिकोण को सच्चे हृदय से अपनाये रहे। पतित से पतित और घृणित से घृणित नारी को भी वह बराबर करुणा और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, इसलिये अपनी रचनाओं में भी वह उसे उसी रूप में चित्रित करना पसंद करते थे। यह ठीक है कि नारी के प्रति केवल करुणा का मनोभाव प्रगतिशील दृष्टिकोण नहीं है। सामाजिक अत्याचारों से ग्रस्त नारी के प्रति केवल करुणा दरसाने से उसकी वैयक्तिक और सामाजिक मर्यादा में कोई वृद्धि नहीं हो जाती। आवश्यकता है उसमें सामाजिक अत्याचारों के प्रति विद्रोह की भावना जगाने और उसकी आत्म-मर्यादा की वृद्धि में सहायक तत्वों को उभाड़ने की। पर हमारे वर्तमान विषय से इस बात का कोई संबंध नहीं है। हम यहाँ पर केवल इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि जो लोग शरत् को एक उच्छृंखल और उत्तरदायित्वहीन व्यभिचारी और शराबी के रूप में प्रचारित करना चाहते हैं वे वास्तविकता के प्रति एकदम आँखें मूँदे हुए हैं।

शरत् अपनी रचनाओं द्वारा हमारे सामने एक अत्यंत सहृदय संवेदनशील और आदर्शवादी 'कवि' के रूप में आते हैं, और जिन लोगों से उनका व्यक्तिगत परिचय रहा है वे जानते हैं कि जीवन में भी उनका वही रूप दिखायी देता था। जो साधरण से साधारण स्त्रियाँ भी उनके संपर्क में आयीं उनके प्रति भी शरत् के मन में करुणा, संवेदनशीलता और सहृदयता की भावनाएं उमड़ती रहीं। कभी किसी भी नारी की आर्थिक या सहृदयता-जनित विवशता से अनुचित लाभ उठाने की तनिक भी प्रवृत्ति उनके मन में कभी नहीं जगी, यह बात स्वयं शरत् ने एक बार मुझसे कही थी। उनके निकट और घनिष्ठ संपर्क में आने के कारण स्वयं मुझे भी उनके स्वभाव और व्यवहार के अध्ययन से जो अनुभव हुआ उससे उनकी वह बात प्रत्यक्ष रूप से पूर्णतः प्रमाणित होती थी।

उनके जीवन में ऐसी परिस्थितियां निश्चित रूप से आयीं जब नारी-हृदय के अक्षय और कभी न सूखने वाले उत्स से उमड़ी हुई उच्छ्वसित प्रेम-धाराओं ने उन्हें परिप्लावित कर दिया; पर अधिकतर यही देखा गया कि अपने नीति-निष्ठ और श्रद्धाशील हृदय के प्रबल प्रयत्नों से वह उस ज्वार के आवेग में बह जाने से रह गये।

नारी की दयनीयता और साथ ही अक्षय स्नेहशीलता का पहला परिचय शरत् को तब मिला जब उनकी आयु प्रायः अठारह वर्ष की थी। किशोर और यौवनावस्था के बीच की उस अपार रहस्यमय मानसिक स्थिति में उनका परिचय एक बार किसी एक विधवा युवती से हो गया। यह परिचय कुछ विचित्र परिस्थितियों में हुआ था। अपनी किसी खाम-खयाली से प्रेरित होकर उन्होंने पुरी जाने का निश्चय कर लिया था। उनके भीतर जो चिर-घुमक्कड़ वर्तमान था वह अपने निर्विचित्र जीवन की तत्कालीन परिस्थितियों से असंतुष्ट होकर बंधनहीन अवस्था में अज्ञात, अपरिचित स्थानों में एकाकी भ्रमण करने के लिये उतावला हो उठा था। उनके कवि-हृदय और मनमौजी पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, और प्रायः जन्म से ही जिन भागलपुर-प्रवासी मामा का अवलंब उन्हें था उनकी मृत्यु हो चुकी थी। अपने स्कूली जीवन की व्यवस्था से भी वह सन्तुष्ट नहीं थे। न तो आर्थिक दृष्टि से वह अपने को उस जीवन में खपा पा रहे थे और न उनके चिर-चंचल और चिर-प्रसरणशील मनकी प्रवृत्ति ही उस जीवन के नियम-बद्ध और सीमित वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित कर पा रही थी।

अतएव एक दिन अपने किसी भी आत्मीय को कोई सूचना दिये बिना ही वह अपने गाँव से पुरी की यात्रा के लिये निकल पड़े। पर भाग्य में कुछ दूसरा ही चक्र बँधा था। दो-एक मील पैदल चलने के बाद ही

भूख और श्रम के कारण उनका शरीर और मन दोनों थक गये और वह एक पोखर के पास एक मौलसिरी के पेड़ की छाया में सुस्ताने के इरादे से बैठ गये। पर बैठने से उनकी क्लांति बढ़ी ही, घटी नहीं। धीरे-धीरे उनका अलसाया हुआ शरीर और अधिक शिथिल होता चला गया और वह वहीं मिट्टी पर लेटकर सो गये।

एक सुन्दरी विधवा युवती, जो पोखर से पानी लाने के लिये चली जा रही थी, एक अपरिचित और सुन्दर नवयुवक को उस असमय में पेड़ के नीचे सोते देखकर कुतूहलवश रुक गयी। कुछ क्षणों के लिए एकाग्र भाव से वह नवयुवक की ओर देखती रही। एक अजीब सी क्लांति-भरी उदास छाया उसके मुख पर पड़ी हुई थी, जो उसे सुन्दरतर बना रही थी। उसके बाद वह पानी भरने के लिये चली गयी। जब पानी भर कर लौटी तब भी वह अपरिचित नवयुवक बेखबर सोया था। आस-पास में कहीं कोई व्यक्ति नहीं था। विधवा युवती के पांव फिर बरबस उस स्थान पर ठहर गये। नवयुवक के क्लांत मुख की ओर फिर एक बार गौर से देखने पर उसके स्नेह-परायण नारी हृदय के भीतर यह सहज अनुभूति अन्तःप्रज्ञा की बिजली के-से प्रकाश में जगी कि वह तरुण किसी कारण से अपने घर वालों से असन्तुष्ट होकर भाग चला आया है और निराश्रय और निराहार अवस्था में पड़ा है। उसके भीतर स्नेह और करुणा का स्रोत उमड़ चला। अपनी सामाजिक स्थिति का खयाल करके एक बार उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि अपनी करुणा-जनित पीड़ा अपने अन्तर्मन में ही दबाकर उस अज्ञात-कुल-शील नवयुवक को छोड़ सीधे घर को वापस चल देना उचित है। पर फिर उसके नारी-हृदय की स्नेह-वेदना उमड़ उठी। वह रह न सकी। उसने जोर से पुकारते हुए कहा : "यहाँ रास्ते में क्यों सोये हो?"

शरत्‌चंद्र नींद की गोद में न जाने किन स्वप्नों में डूबे हुए थे। उनके कानों तक वह आवाज नहीं पहुँची। युवती ने अपनी आवाज को और अधिक चढ़ाते हुए कहा : "सुनते हो ?" दो-तीन बार इसी तरह पुकारने के बाद शरत् की नींद टूटी। सामने एक सुन्दरी तरुणी को देखकर वह घबराये हुए से उठ खड़े हुए। युवती ने सस्नेह मुस्कराते हुए पूछा : "तुम्हारा घर कहाँ है ? यहाँ क्यों सोये हो ?"

शरत्‌चंद्र बड़ी सफाई से अपने परिचय की बात टालते हुए बोले : "मैं पुरी की यात्रा के लिये निकला हूँ। जगन्नाथ जी के दर्शन की बड़ी इच्छा है।"

उस छोटी उम्र में जगन्नाथ जी के दर्शन की आकांक्षा की बात युवती की समझ में कुछ आयी नहीं। पर इस सम्बन्ध में कोई प्रश्न न करके उसने फिर वही पुराना प्रश्न दुहराया : "पर यहाँ रास्ते में सोने की आवश्यकता कैसे आ पड़ी ?"

युवती के अन्तर की सहृदयता उसके मुख के भाव से स्पष्ट झलक रही थी। शरत्‌चंद्र ने सोचा कि उसके आगे वास्तविकता को छिपाने में कोई लाभ नहीं है। बोले : "दो दिन से न मैंने कुछ खाया है न आराम ही कर पाया हूँ। इसलिये रास्ते में चलते-चलते थककर यहीं सो गया था।"

युवती के मुख पर स्नेह-जनित करुणा से भींगी मुसकान छा गयी। अत्यन्त कोमल स्वर में उसने कहा : "पर पेड़ के नीचे सोने से क्या तुम्हारी भूख जाती रहेगी ? चलो मेरे साथ; कुछ खाकर वहीं आराम करना।"

शरत्‌चंद्र द्विविधा में पड़ गये। विस्मय-उत्सुक दृष्टि से युवती की ओर देखते हुए चुपचाप खड़े रहे।

"क्या सोच रहे हो ?" युवती ने उसी सहज स्नेह-भरी मुसकान के साथ कहा। "मेरे साथ चलने में क्यों हिचक रहे हो ? मैं उम्र में तुमसे काफी बड़ी हूँ। तनिक संकोच न करके सीधे चले चलो।"

और कोई समय होता तो शरत्चन्द्र रास्ते में मिली हुई किसी अपरिचित युवती के साथ उसके घर चलने को कभी राजी न होते। पर उस समय भूख से उनका बुरा हाल था। भूख-निवारण की सुविधा होने का प्रलोभन उनके लिए बहुत बड़ा था। इसलिए उनके मन का प्रतिरोध अधिक समय तक न ठहर सका। वह धीरे से उसके साथ हो लिये।

थोड़ी ही दूर पर युवती का घर था। उसका वास्तविक नाम न देकर हम यहां पर उसे केवल अभागिनी ही कहेंगे। संसार में वह अकेली थी। पति की मृत्यु हो चुकी थी। न मायके में उसका अपना कहने वाला कोई शेष रह गया था, न ससुराल में। दूर के रिश्ते का एक देवर और एक बहनोई, केवल ये दो व्यक्ति ऐसे थे जो उस पर अपनी 'आत्मीयता' का 'अधिकार' घोषित करते रहते थे। जब शरत्चन्द्र उसके यहाँ पहुँचे तब घर पर कोई नहीं था। युवती ने उनके स्नानादि का प्रबन्ध कर दिया और उसके बाद घर पर जो चीजें तैयार थीं उन्हें एक थाली में सजाकर उसने शरत् के आगे रखते हुए कहा : "खाओ। अभी इन्हीं चीजों से काम चलाओ। शाम को ताजा चीजें खाने को मिलेंगी।"

शरत्चन्द्र घर पर पाँव रखने के बाद से ही बड़े संकोच का अनुभव कर रहे थे। उनके प्रत्येक हाव-भाव और गति-विधि से उनका वह संकोच स्पष्ट हो रहा था। पेट में कुछ डालने की तीव्र इच्छा होने पर भी वह थाली की ओर हाथ बढ़ाते हुए झिझक रहे थे।

अभागिनी ने अपने स्वर में पहले से भी अधिक स्नेह-मधु घोलते हुए कहा : "क्यों सकुचाते हो ? मेरे हाथ का खाने से तुम्हारी बँभनई नष्ट न होगी, मेरी बात का विश्वास करो। और फिर, मैं तुम्हारी बड़ी बहन की तरह हूँ। मेरे आगे संकोच किस बात का ! लो, खाओ।"

इसके बाद भी रुके रहना शरत्चन्द्र के लिए असंभव था। उनका सारा संकोच जैसे किसी जादू के मंत्र से काफूर हो गया। थाली अपनी ओर बढ़ाकर वह एकाग्र मन से भोजन करने लगे।

जब खा-पी चुके, तब अभागिनी ने एक खटिया पर एक नयी धुली हुई चादर बिछाकर शरत् से सो जाने के लिए कहा। बिना किसी आपत्ति के शरत्चन्द्र चुपचाप लेट गए। भोजन से भी अधिक आवश्यकता उन्हें नींद की महसूस हो रही थी। लेटते ही बेखबर सो गये। पिछले कुछ दिनों से न उनका शरीर ठीक था न मन। तिस पर अनियम और अव्यवस्था तो चल ही रही थी। बीमारी उन्हें घेर रही थी, पर अव्यवस्था और अनवकाश के कारण बीमार पड़ने की 'सुविधा' ही उन्हें जैसे नहीं मिल रही थी। पर अब जब खाने पीने और सोने की व्यवस्था हो गई तब जैसे उनके अंतर्मन ने सोचा कि अब बीमार पड़ने की अच्छी सुविधा है ! और वह सचमुच बीमार पड़ गए ! तीसरे पहर जब उनकी आंखें खुलीं तब उन्होंने महसूस किया कि उनके सारे शरीर पर कोई अज्ञात और अदृश्य चाप पड़ा है, अंग-अंग जैसे टूटा हुआ है, जीभ में जैसे कोई मीठी चीज चिपक गई है और सिर भारी है। युवती से उन्होंने एक गिलास पानी पीने को मांगा। पानी पीकर वह फिर करवट बदलकर लेट गये।

"बात क्या है ?" घबराकर अभागिनी ने पूछा।

"कुछ नहीं। सिर तनिक भारी है।"

"देखूं," कहकर अभागिनी ने उनके सिर पर हाथ रखा। वह चूल्हे पर रखे हुए तवे की तरह जल रहा था। उसके बाद उसने उनकी हथेली को अपने हाथ में लिया। उसकी जलन से यह अनुमान लगाने में युवती को देर न लगी कि उसका अतिथि ज्वर से पीड़ित है।

तब से वह दिन-रात रोगी अतिथि की सेवा में व्यस्त रही। चौथे दिन शरत् ज्वर से मुक्त हुए। पर इस कदर दुर्बल हो गये थे कि मुँह से बोल नहीं निकलता था। तीन-चार दिन की और परिचर्या के बाद वह स्वस्थ हुए। इस बीच उन्हें युवती के शील, स्वभाव, गुण और सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति का बहुत-कुछ परिचय प्राप्त हो गया था। वह सोचने लगे कि कितने बड़े सौभाग्य से उन्हें अकस्मात्, अपूर्व-प्रत्याशित रूप में एक ऐसी नारी के परिचय का सुयोग प्राप्त हुआ जो तब तक उनके अंतर्मन में केवल एक छायात्मक आदर्श के रूप में वर्तमान थी। उस अल्प वय में ही उन्हें यथार्थ जीवन के अनेक कड़वे और मीठे अनुभव हो चुके थे। नारी की महानता के संबंध में जो जन्मजात विश्वास उनके अन्तर में समाया हुआ था वह यद्यपि अभी तक डिगा नहीं था, तथापि जीवन की वास्तविकता ने उस पर धक्का पहुंचाने में अपनी ओर से कोई बात उठा नहीं रखी थी। पर इस बार जिस नारी से उनका आकस्मिक परिचय हुआ उसने नारी-हृदय की महत्ता के सम्बन्ध में उनके विश्वास की जड़ को ऐसी पक्की तरह से जमा दिया कि फिर जीवन में वह कभी टूटा ही नहीं। उन्होंने उमड़े हुए आँसुओं से मन-ही मन उस नव-परिचिता को बार-बार श्रद्धा से प्रणाम किया। उसके मुख पर सब समय झलकते रहने वाला स्नेह-मण्डित माधुर्य शरत् के अन्तर में नयी-नयी भाव-तरंगें उद्वेलित करता रहता था और चिर-उपेक्षित भार-

तीय नारी के स्नेह-प्रेम, त्याग, क्षमा और करुणा आदि भावों की मिश्रित महिमा का एक नया ही परिचय पाती हुई उनकी आत्मा अन्तर के भीतर अत्यन्त पुलकित होती रहती थी। और उस युवती ने भी शरत् के भीतर निहित-अगाध मानव प्रेम, और विशेष करके नारी-हृदय के करुण-कोमल, स्नेह-सजल भावनाओं के प्रति सहज-सहानुभूतिशीलता का परिचय अपने अन्तर्मन के सूक्ष्म तारों के माध्यम से प्राप्त कर लिया था। दोनों के अन्तर के अदृश्य तार जैसे एक दूसरे की आत्मा के सच्चे रूप को बिना किसी के बताये—समझ गये थे। विधवा अभागिनी के मन में एक भावुक, सहृदय, समझदार और किसी अज्ञात दुःख से दुःखी नवयुवक के प्रति युवती नारी के स्वाभाविक प्रेम, बड़ी बहन के सहज स्नेह और मातृ जाति की सहजात करुणा की धाराएँ उमड़कर एक रूप में मिल गयी थीं; और शरत् के मन में एक चिर-दुःखिनी भारतीय विधवा तरुणी के तप, त्याग और रोग-शोक, दुःख-दारिद्र्य से पीड़ित मानवता के प्रति निःस्वार्थ स्नेह-भावना का एक विचित्र ही प्रभाव पड़ रहा था, जिसका ठीक ठीक विश्लेषण करने में वह स्वयं अपने को असमर्थ पा रहे थे।

कुछ ही दिनों के परिचय से शरत् यह समझने लगे थे कि उन्हें उस अभागिनी विधवा युवती की परिस्थितियों के संबंध में पूरी जानकारी हो गई है। पर वास्तव में उन्हें अभी बहुत कुछ जानना बाकी था।

उस दिन रात में अभागिनी ने शरत् को सुपच भोजन—प्रायः पथ्य—खिलाया। और स्वयं भी थोड़ा-बहुत खाकर, शरत् के सोने का प्रबन्ध करके नित्य की तरह बगलवाले कमरे में जाकर लेट गयी। कुछ दिनों से स्वयं उसका शरीर भी स्वस्थ नहीं था और मन भी खिन्न था। इधर शरत् को नींद नहीं आ रही थी। तरह तरह के विचार उनके मन में उत्पन्न हो रहे थे। वह सोच रहे थे कि अदृष्ट भाग्य के किस चक्र से

उनका जीवन एक अपूर्व परिचित नारी के स्नेह-बन्धन में बँधने जा रहा है। वह कौन होती है उनकी! और क्यों इतने दिनों तक वह उसके यहाँ इस तरह जम गये हैं कि वहाँ से जाने का कोई विचार ही उनके मन में नहीं उठता! यह ठीक है कि बीमारी उनकी उस शिथिलता का कुछ कारण अवश्य रही है। अभी तक उनमें शारीरिक और मानसिक बल लौट नहीं आया है। पर क्या केवल संसर्ग ही उनकी इस मनःस्थिति का एकमात्र कारण है? क्या उस विधवा युवती के ममत्वमय स्नेहाचरण का इसमें कोई सम्बन्ध नहीं है?

इसी तरह की कल्पनाओं में वह डूबे हुए थे कि सहसा बाहर दरवाजे पर किसी के दस्तक देने की आवाज सुनायी दी। शरत्चंद्र चौंक उठे। उस असमय में किसी परिचित व्यक्ति के आने की कोई सम्भावना नहीं थी। वह एकांत मनोयोग से कान लगाकर सुनने लगे। बगलवाले कमरे के दरवाजे पर पहले से भी जोर के धक्के पड़ने लगे। शरत्चंद्र किसी आसन्न अनिष्ट की आशंका से घबराकर अपनी तत्कालीन अस्वस्थ अवस्था में भी उठ खड़े हुए। भीतर से युवती के रोने का सा क्षीण स्वर सुनायी देने लगा और साथ ही दो आदमियों के आपस में झगड़ने और गाली-गलौज करने की आवाज साफ सुनने में आयी।

शरत् ने सुना, एक आदमी कह रहा है: "वह मेरी साली है—मैं ही उसकी परवरिश करता हूँ—वह मेरी है!"

दूसरा आदमी कह रहा था: "मैं अभी बताता हूँ, वह किसकी है! चोट्टा, जुआचोर कहीं का! वह मेरे दादा (बड़े भाई) की घरवाली है, इसलिये उस पर मेरा अधिकार है!"

दोनों के गले से फटी-फटी सी आवाज निकल रही थी, और दोनों कुछ रुक-रुककर, लड़खड़ायी हुई सी जबान में बोल रहे थे। शरत् को यह

समझने में देर न लगी कि दोनों शराब पीकर आये हैं। पल में सारी स्थिति का एक अस्पष्ट, अनुमानित आभास उनकी आँखों के आगे झलक गया और दुःखिनी विधवा के लिये चिंतित होकर वह दरवाजा खोलने के लिये आगे बढ़े। इतने में उनके कमरे के दरवाजे पर धक्के पड़ने लगे। उन्होंने तुरन्त दरवाजा खोल दिया।

दुःखिनी विधवा युवती चीख और दबे हुए स्वर में रोती हुई उनके पाँवों पर गिर पड़ी। अत्यन्त कातर स्वर में धीरे से बोली : "भैया, मुझे बचाओ!" और उसके बाद ही वह बेहोश होकर गिर पड़ी।

उस संकटपूर्ण परिस्थिति में शरत्चन्द्र का सारा संकोच जाता रहा। उन्होंने भीतर से दरवाजा बन्द करके अभागिनी को किसी तरह उठाकर पलँग पर लिटा दिया और उसके मुँह पर पानी छिड़ककर पंखे से हवा करने लगे। जब युवती ने होश में आकर आँखें खोलीं तब शरत् कुछ निश्चिन्त हुए। इसके बाद इस बात का पता लगाने के लिये लालटेन हाथ में लेकर बाहर निकल पड़े कि जो दो नर-पिशाच विधवा युवती के लिये आपस में लड़ रहे थे वे कहाँ है और किस स्थिति में हैं। उन्होंने देखा कि दोनों दरवाजे के पास पड़े हुए हैं। एक के सिर से खून निकल रहा था और दूसरे के हाथ से। दोनों के मुँह से ताड़ी की उत्कट गंध आ रही थी। घृणा से शरत्चन्द्र का सारा शरीर सिकुड़ गया, फिर भी दोनों की सेवा करने से वह नहीं चूके। दोनों का रक्त धोकर पट्टी बाँधकर फिर भीतर चले गये। रात-भर जमीन पर सोकर पलंग पर अधमरी-सी लेटी हुई अनाथा विधवा युवती की रक्षा करते रहे।

युवती ने रोते हुए शरत्चन्द्र को बताया कि वे दोनों बारहों महीने इसी तरह लड़ते रहते हैं। बीच बीच में कुछ समय के लिये शांत हो जाते हैं, और फिर एक दिन शराब पीकर आपस में इसी तरह मारपीट करने

लगते हैं। उन दोनों के कारण उसका जीवन विषमय हो गया है और अक्सर उसे गले में फांसी लगाकर आत्महत्या करने की इच्छा होती है।

"जाने किस घोर पाप का उत्कट फल भोगने के लिये मैं अभी तक जीती हूँ, भैया!" आँखें पोंछती हुई, मर्म-विदारक स्वर में अभागिनी बोली: "न इस संसार में कहीं मेरा अपना कहने को है, न कहीं तिल-भर ठौर ऐसी है जहां मैं निश्चिन्त होकर अपने को छिपा कर पड़ी रह सकूं। 'वह' मुझे छोड़ कर चल बसे। मेरे रहने और खाने भर का ठिकाना 'वह' अवश्य लगा गये थे, पर इन दुष्टों के मारे एक क्षण के लिये भी मैं निश्चिन्त नहीं हो पाती हूँ। एक तुम इस अभागे जीवन में ऐसे मिले हो जिसके आगे मैं कम से कम जी खोल कर अपना रोना तो रो सकती हूँ! पर तुम भी कब तक जीवन में मेरा साथ दे सकोगे!" कहती हुई वह फिर बेअख्तियार फफक-फफककर रोने लगी।

शरत् ने उसे दिलासा देते हुए सच्चे हृदय से कहा: "इस तरह हिम्मत हारने से और रोने से कोई लाभ नहीं होगा, जीजी! तुम्हारी जैसी समझदार नारी के लिये इस तरह हताश होकर आत्म-हत्या की बात सोचना किसी तरह भी उचित नहीं है। मैं तुमको वचन देता हूँ कि मैं आजीवन तुम्हें नहीं छोड़ूंगा और इस संसार के अन्तिम छोर तक तुम्हारा साथ दूँगा। पर पहले तुम्हें स्वयं अपने भीतर से बल बटोरना होगा। तभी तुम जीवन के दुर्गम और बीहड़ पथ को पार करने में समर्थ हो सकोगी। इस तरह घबराने से कैसे काम चलेगा!"

कहा नहीं जा सकता कि शरत् की बात सुनकर अभागिनी मन-ही-मन अविश्वासपूर्वक मुस्करायी, या एक सच्चा सहारा पाने की आशा से संतोष के आंसू उसकी आँखों से निकले। जो भी हो, उस समय वह चुप हो गयी, कुछ बोली नहीं।

समझने में देर न लगी कि दोनों शराब पीकर आये हैं। पल में सारी स्थिति का एक अस्पष्ट, अनुमानित आभास उनकी आंखों के आगे झलक गया और दुःखिनी विधवा के लिये चिंतित होकर वह दरवाजा खोलने के लिये आगे बढ़े। इतने में उनके कमरे के दरवाजे पर धक्के पड़ने लगे। उन्होंने तुरन्त दरवाजा खोल दिया।

दुःखिनी विधवा युवती क्षीण और दबे हुए स्वर में रोती हुई उनके पाँवों पर गिर पड़ी। अत्यन्त कातर स्वर में धीरे से बोली : "भैया, मुझे बचाओ!" और उसके बाद ही वह बेहोश होकर गिर पड़ी।

उस संकटपूर्ण परिस्थिति में शरत्चन्द्र का सारा संकोच जाता रहा। उन्होंने भीतर से दरवाजा बन्द करके अभागिनी को किसी तरह उठाकर पलँग पर लिटा दिया और उसके मुँह पर पानी छिड़ककर पंखे से हवा करने लगे। जब युवती ने होश में आकर आँखें खोलीं तब शरत् कुछ निश्चिन्त हुए। इसके बाद इस बात का पता लगाने के लिये लालटेन हाथ में लेकर बाहर निकल पड़े कि जो दो नर-पिशाच विधवा युवती के लिये आपस में लड़ रहे थे वे कहाँ हैं और किस स्थिति में हैं। उन्होंने देखा कि दोनों दरवाजे के पास पड़े हुए हैं। एक के सिर से खून निकल रहा था और दूसरे के हाथ से। दोनों के मुँह से ताड़ी की उत्कट गंध आ रही थी। घृणा से शरत्चन्द्र का सारा शरीर सिकुड़ गया, फिर भी दोनों की सेवा करने से वह नहीं चूके। दोनों का रक्त धोकर पट्टी बाँधकर फिर भीतर चले गये। रात-भर जमीन पर सोकर पलंग पर अधमरी-सी लेटी हुई अनाथा विधवा युवती की रक्षा करते रहे।

युवती ने रोते हुए शरत्चन्द्र को बताया कि वे दोनों बारहों महीने इसी तरह लड़ते रहते हैं। बीच बीच में कुछ समय के लिये शांत हो जाते हैं, और फिर एक दिन शराब पीकर आपस में इसी तरह मारपीट करने

लगते हैं। उन दोनों के कारण उसका जीवन विषमय हो गया है और अक्सर उसे गले में फाँसी लगाकर आत्महत्या करने की इच्छा होती है।

"जाने किस घोर पाप का उत्कट फल भोगने के लिये मैं अभी तक जीती हूँ, भैया!" आँखें पोंछती हुई, मर्म-विदारक स्वर में अभागिनी बोली। "न इस संसार में कहीं मेरा अपना कहने को है, न कहीं तिल-भर ठौर ऐसी है जहां मैं निश्चिंत होकर अपने को छिपा कर पड़ी रह सकूं। 'वह' मुझे छोड़ कर चल बसे। मेरे रहने और खाने भर का ठिकाना 'वह' अवश्य लगा गये थे, पर इन दुष्टों के मारे एक क्षण के लिये भी मैं निश्चित नहीं हो पाती हूँ। एक तुम इस अभागे जीवन में ऐसे मिले हो जिसके आगे मैं कम से कम जी खोल कर अपना रोना तो रो सकती हूँ! पर तुम भी कब तक जीवन में मेरा साथ दे सकोगे!" कहती हुई वह फिर बेअख्तियार फफक-फफककर रोने लगी।

शरत् ने उसे दिलासा देते हुए सच्चे हृदय से कहा : "इस तरह हिम्मत हारने से और रोने से कोई लाभ नहीं होगा, जीजी! तुम्हारी जैसी समझदार नारी के लिये इस तरह हताश होकर आत्म-हत्या की बात सोचना किसी तरह भी उचित नहीं है। मैं तुमको वचन देता हूँ कि मैं आजीवन तुम्हें नहीं छोड़ूंगा और इस संसार के अन्तिम छोर तक तुम्हारा साथ दूँगा। पर पहले तुम्हें स्वयं अपने भीतर से बल बटोरना होगा। तभी तुम जीवन के दुर्गम और बीहड़ पथ को पार करने में समर्थ हो सकोगी। इस तरह घबराने से कैसे काम चलेगा!"

कहा नहीं जा सकता कि शरत् की बात सुनकर अभागिनी मन-ही-मन अविश्वासपूर्वक मुस्करायी, या एक सच्चा सहारा पाने की आशा से संतोष के आँसू उसकी आँखों से निकले। जो भी हो, उस समय वह चुप हो गयी, कुछ बोली नहीं।

इस घटना के दूसरे ही दिन शरत् को फिर ज्वर आ गया। वह ज्वर के पिछले आक्रमण से अभी पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाये थे कि सहसा उस तरह की आतंकजनक घटना घट गयी। केवल घटना ही नहीं घटी, बल्कि उसके फलस्वरूप अभागिनी के जीवन की भयावह स्थिति का एक दूसरा ही आतंकजनक पहलू उनके आगे उद्घाटित हो गया था। वह उस नये अनुभव और नयी अनुभूति के धक्के को न सँभाल सके और बुरी तरह बीमार पड़ गये।

अभागिनी घबरा उठी। कोई दूसा चारा न देखकर उसने अपने उसी दूर के रिश्ते के देवर को पकड़ा और उसके द्वारा अपना एक गहना गिर्वी रख कर रुपयां का प्रबन्ध करके एक डाक्टर को बुलाकर शरत् की चिकित्सा आरम्भ कर दी। उसका वह दूर-सम्पर्कीय देवर उग्रस्वभाव अवश्य था, तथापि वह बहुत बुरा आदमी नहीं था। अभागिनी को वह बहुत चाहता था। पर उसका वह प्रेम दिन पर दिन उग्र और उत्कट रूप धारण करता जाता था। यही उसके स्वभाव की कमजोरी थी, जिससे अभागिनी के लिये खतरा बढ़ता जाता था। जो भी हो, उसको यह अभीष्ट था कि शरत् की चिकित्सा अच्छी तरह से हो, इसलिए खतरे के बावजूद उसने 'देवर' की चिरौरी की। और इस संबन्ध में 'देवर' ने उसकी पूरी सहायता की। फलस्वरूप शरत् शीघ्र ही रोगमुक्त हो गये। अभागिनी ने अपनी संकटपूर्ण आर्थिक और सामाजिक स्थिति में भी उनकी परिचर्या में कोई बात उठा नहीं रखी, इस बात का बहुत गहरा प्रभाव शरत् के मन पर पड़ा। भारतीय विधवा नारी को समाज के बीच में रहकर 'क्षुरस्य धारा' से भी तीक्ष्ण जिस दुर्गम पथ पर चलना होता है उसका सुस्पष्ट और प्रत्यक्ष ज्ञान इसके पहले शरत् को नही था। इस बार जब उन्होंने अपनी आंखों से सारी स्थिति को प्रत्यक्ष देखा तब उनका हृदय अभागिनी की संकटावस्था का अनुभव करके आतंकित हो उठा। उनकी

समझ में नहीं आता था कि समाज के गुंडों से कैसे उस असहाय नारी की रक्षा की जाय। सबसे विशेष बात यह थी कि स्वयं उनका नव-मुकुलित तरुण हृदय उस दुःखिनी, त्यागमयी और स्नेहशील नारी के प्रति अधिकाधिक आकर्षित होता चला जाता था। उन्होंने मन ही मन निश्चय कर लिया कि उस स्नेहाकर्षण को वह श्रद्धा और सम्मान की भावना में बदलकर उसे अत्यन्त उन्नत और उदात्त रूप प्रदान करेंगे।

जब शरत् का स्वास्थ्य लौट आया और वह चलने फिरने के योग हो गये तब उन्होंने निश्चय किया कि अभागिनो का स्नेह बंधन तोड़कर वह फिर से घुमक्कड़ों का अनिश्चित जीवन बितायेंगे। पर रह रहकर यह भावना उनके हृदय में तीखे काँटे की सी चुभन पैदा करती थी कि उस अभागिनी का साथ छोड़कर वह उसे बलि पशु का-सा जीवन बिताने के लिये हत्यारों के हाथ में सौंप जायेंगे। किन्तु उपाय क्या हो सकता है? उनकी समझ में नहीं आता था।

अन्त में एक दिन उन्होंने डरते-डरते, दबी जबान से अभागिनी के आगे अपना निश्चय व्यक्त कर ही डाला। बोले: "मुझे अब जल्दी ही चले जाना होगा!"

"कहां?" अभागिनी ने जैसे किसी स्वप्न से जागकर, चौंकते हुए पूछा। वह जीवन में पहली बार एक सहृदय व्यक्ति के साहचर्य से अपने को जीवित संसार के बीच में मानने लगी थी, अन्यथा इतने दिनों तक वह जैसे जीवन के उस पार रहने वाले भूतों, प्रेतों और नर-पिशाचों के ही सम्पर्क में रहती आई थी—सामाजिक और सांसारिक परिस्थतियों की विवशता के कारण। इसलिए जब शरत् ने अपने विचार से उसे सूचित किया तब सहसा एक अप्रत्याशित सा धक्का उसे लगा। वैसे उसका अन्तर्मन निश्चय ही जानता रहा होगा कि वह नव-परिचित,

सहृदय-स्वभाव नव-युवक आजीवन उसका साथ नहीं दे सकेगा—उसकी (अर्थात् शरत् की) सामाजिक, आर्थिक और वयगत स्थिति ही ऐसी नहीं है। फिर भी उसने अपने भीतर से बल बटोरा। पूछा : "कहाँ जाओगे ?"

"पुरी की ओर जाने का विचार करके चला था, उसी को पूरा करने का इरादा है।"

अभागिनी ने समस्त द्विविधा त्यागकर अपने सम्बन्ध में भी तत्काल निश्चय कर लिया। बोली : "मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी !"

शरत् के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन पर निर्भर करके वह चिर-दुःखिनी विधवा तरुणी संकीर्ण समाज के दुर्दमनीय शासन और कटूक्तियों की परवा न करके उनके साथ पुरी चलने को कैसे तैयार हो गई ! तब तो उस साहसी नारी के लिए भीत और चिंतित होने का कोई कारण नहीं है—उन्होंने सोचा। उसकी चारित्रिक दृढ़ता के प्रति उनके मन में श्रद्धा की भावना और अधिक बढ़ गई।

पक्की परीक्षा लेने के इरादे से उन्होंने कहा : "क्या मेरे साथ चलना तुम व्यक्तिगत और सामाजिक सभी दृष्टियों से उचित समझती हो ? क्या सचमुच तुम्हारे भीतर इतना साहस है कि मेरे साथ पुरी चलने में तुम्हारे विरुद्ध जिस झूठे कलंक का प्रचार होगा और जो सामाजिक अवमानना होगी उसे शांत भाव से सहन कर सकोगी ?"

अभागिनी का मुख सहसा अत्यन्त गम्भीर हो आया। पर वह गम्भीरता केवल क्षण-भर के लिये रही। उसके बाद ही उसके मुख का सहज स्निग्ध रूप लौट आया। स्नेह-भरी मुसकान आंखों में झलकाती हुई वह अत्यन्त शांत और मधुर स्वर में बोली : "तुम्हारे समान निरीह

बच्चे के साथ चलने में भी क्या समाज के ः की आशंका करनी होगी ! जो समाज इस कदर नीच हो कि तुम्हारे सम्बन्ध में भी मेरे प्रति सन्देह प्रकट करे, उसकी तनिक भी परवा मैं नहीं करूँगी। मैं इतनी कायर नहीं हूँ कि समाज के झूठे प्रचार के भय से अपनी अन्तरात्मा की सच्ची आवाज का भी गला घोंट दूँ। और मैं तुम्हें यह भी विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि मैं तुम्हारे ऊपर कोई भार नहीं बनूँगी। अपने पांवों के बल खड़े होने की ताकत मुझमें है। मुझे केवल पथ का एक साथी चाहिये।"

शरत् अकृत्रिम आश्चर्य से उस अद्भुत नारी की आंखों में चमकते हुए तेजोमय रूप को देखते रह गये। इतना वह जानते थे कि वह थोड़ी बहुत पढ़ी लिखी भी है और अपेक्षाकृत नये साहित्यिक और सामाजिक विचारों की जानकारी भी किसी हद तक रखती है। पर बाहर की पढ़ाई की अपेक्षा उसके अन्तर की पढ़ाई किस तीव्र गति से चल रही है इसका कोई ज्ञान उन्हें नहीं था।

वास्तविकता यह थी कि वह इतनी देर तक स्वयं अपने भीतर कायरता का अनुभव कर रहे थे। पर जब उन्होंने अभागिनी का वह तेज और साहस देखा तो उनकी सारी दुविधा जाती रही और वह उसे अपने साथ ले चलने को राजी हो गये। उनके तरुण हृदय में जीवन की एक नयी ही अनुभूति जग रही थी और एक नया ही ज्ञान हो रहा था। उन्होंने यूरोप के 'नाइट' लोगों की कहानियां पढ़ी थीं। आज वह स्वयं अपने को भी एक 'नाइट' की स्थिति में पा रहे थे, जिसके ऊपर एक संकट-ग्रस्त तरुणी की रक्षा का भार आ पड़ा हो। वह अपने भीतर 'नाइट' के ही अनुरूप नैतिक और मानसिक बल जगाने के प्रयत्नों में जुट गये।

चलने का इरादा होने पर भी शरत्चन्द्र शारीरिक अथवा मानसिक आलस्यवश दो दिन और पड़े रह गए। तीसरे दिन रात में फिर दरवाजे पर धक्के पड़ने लगे और उसी रात की घटना फिर दुहराई गई। अभागिनी के दूर सम्पर्कीय देवर और बहनोई के बीच फिर वही पुराना झगड़ा अत्यन्त कुत्सित रूप में आरम्भ हो गया। शरत् ने इस बात पर ध्यान दिया कि उन दोनों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण ही अभागिनी इतने दिनों तक किसी तरह अपनी लाज बचा पाई था।

अभागिनी ने रोते हुए शरत् से कहा: "यदि तुम मुझे कल ही यहां से नहीं ले चलते तो मैं आत्महत्या कर लूँगी।"

फलतः शरत् और अधिक विलंब न कर सके। दूसरे दिन तड़के ही दोनों प्रायः निःसम्बल अवस्था में अनिश्चित यात्रा के लिए निकल पड़े। अभागिनी के देवर और बहनोई को जब इस बात की खबर लगी तब दोनों अपने हाथ का शिकार एक तीसरे व्यक्ति के हाथ में जाते देखकर अत्यन्त चिंतित हो उठे और आपसी झगड़ा भूलकर एक हो गये। इतने दिनों तक शरत् के अस्तित्व को दोनों जो सहन किए हुये थे उसका एक कारण तो दोनों की पारस्परिक प्रति-द्वन्द्विता थी और दूसरा कारण यह था कि वे शरत् को एक नाबालिग लड़का समझते थे जिससे किसी प्रकार की हानि की कोई सम्भावना उन्हें दिखाई नहीं देती थी। पर जब उन्होंने देखा कि वही 'नाबालिग' लड़का उनकी प्रेम-पात्री को भगा ले गया है तब वे शरत् को 'छिपा रुस्तम' अर्थात पक्का गुंडा जानकर गांव के दो चार और आदमियों को साथ लेकर उनकी खोज में निकल पड़े।

अभागिनी और शरत् काफी दूर तक पैदल चलने के बाद जब थक गये तब एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर सुस्ताने लगे। जो थोड़ा बहुत पाथेय साथ में ले गये थे उसी को निकालकर अभागिनी एक

बर्तन में किसी तरह चावल उबालकर दोनों की पेट पूजा का प्रबन्ध करने लगी।

अभागिनी खाना बना रही थी और शरत् निश्चिन्त भाव से पेड़ की छाया में लेटे-लेटे आकाश-पाताल की बातें सोच रहे थे। सहसा वह बोल उठे : "हम दोनों का मिलन एक विचित्र ही संयोग है। यह सब एक अविश्वसनीय स्वप्न की तरह मुझे लग रहा है। सोचता हूँ, इसकी परिणति कहाँ होगी! मनुष्य की सबसे बड़ी हार—और साथ ही उसकी सबसे बड़ी विजय—का एक प्रधान कारण मुझे यह लगता है कि भविष्य को जानने का कोई भी उपाय, कोई भी साधन उसके पास नहीं है!"

"अभी से इस तरह की चिन्ता से जी खराब करने से कोई लाभ मुझे नहीं दिखायी देता," अभागिनी चावल की हाँड़ी में लकड़ी का 'करछुल' चलाती हुई, शरत् की ओर बिना देखे ही, गम्भीर भाव से बोली। "मनुष्य को सब समय हर परिस्थिति के लिये तैयार रहना चाहिये।"

दोनों इस तरह की बातें कर ही रहे थे कि दूर से कुछ लोगों को लाठी-सोंटा हाथ में लिये बड़ी तेज चाल से आते हुए देखा गया। माजरा क्या है, यह समझने के पहले ही आक्रमणकारियों के दल ने दोनों को घेर लिया। शरत्चन्द्र पर खूब मार पड़ी और निष्फल प्रतिरोध से छटपटाती हुई अभागिनी का मुँह और हाथ-पाँव बाँधकर 'देवर', बहनोई और गाँव के दूसरे लोग उसे उठाकर ले गये। निरुपाय शरत्चन्द्र के असम्भव प्रयत्नों का कोई फल न हुआ। वह उस असहाय और अनाथ नारी को उन नरपशुओं के हाथ से छुड़ा न सके। उनके कानों में अभागिनी का हृदय-विदारक आर्तनाद मर्मांतक रूप से बजता रहा। वह केवल निश्चेष्ट रूप से, व्याकुल भाव से, विह्वल दृष्टि से उन गुंडों की

ओर देखते रह गये जो अभागिनी का जीवित शव गाँव की ओर लिये चले जा रहे थे। शरत् को धमकी दे दी गई थी कि यदि वह एक कदम भी गाँव की ओर बढ़े नहीं कि उन्हें वहीं पर ढेर कर दिया जायगा। अपनी निरुपायावस्था पर विचार करके शरत् वहीं पड़े रह गये। थोड़ी देर बाद अँधेरा हो गया और रात हो आयी। वह कालरात्रि उन्होंने उसी पेड़ के नीचे बितायी।

अपने ऊपर पड़ी हुई मार तो वह जल्दी ही भूल गये, पर अभागिनी की मर्मभेदी गुहार वह जीवन में कभी न भूल सके। असहाय नारी की उस प्राणघाती वेदना का स्थायी प्रभाव उनके मर्म में अंकित हो गया। उनके परिवर्ती जीवन की सारी चिन्ताधारा पर इस घटना की अमिट छाप पड़ी हुई दिखायी देती है। कुसंस्कारों, अंधविश्वासों और संकीर्ण विचारों से ग्रस्त समाज के निर्मम निर्यातन से पीड़ित नारी के अन्तर का जो हाहाकार-भरा मौन क्रंदन उनकी रचनाओं में विभिन्न रूपों और विभिन्न परिस्थितियों में अभिव्यक्त हुआ है उसके मूल में उनके प्रारम्भिक यौवन की यही दिल दहलानेवाली अभिज्ञता है। इसी आतंक-जनक प्रथम अनुभव का ही यह फल था कि वह सामाजिक परिस्थितियों की विवशता के कारण परित्यक्त, बहिष्कृत और निर्यातित नारी को कभी उपेक्षा की दृष्टि से न देख सके। उसके बाहरी रूप के भीतर मातृ-हृदय की जो प्रदीप्त महिमा निहित है उसे अपनी सहृदयतापूर्ण अंतर्दृष्टि की 'एक्स'-किरणों से देखकर उसके सच्चे स्वरूप को सर्व-साधारण के आगे रखने का आजीवन-व्रत उन्होंने ले लिया। चिर-अपमानित भारतीय नारी का गौरव-गरिमामय स्वरूप शरत्-साहित्य द्वारा पहली बार मध्य-वर्गीय पाठक समाज के आगे काफी बड़े हद तक परिस्फुट हुआ, जिसकी मूल प्रेरिका थी वही अभागिनी।

❀ ❀ ❀

इस निबन्ध के प्रारम्भ में यह इंगित किया जा चुका है कि शरत्‌चन्द्र के सम्बन्ध में जो यह प्रचारित किया जाता है कि उनका सारा जीवन रोमानी रंगीनियों में बीता और वह रोमानी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर विभिन्न नारियों के साथ प्रेम-सम्बन्ध जोड़ते रहे—वह एकदम भ्रमात्मक और निराधार है। पतित से पतित नारी को भी जिस उदार सहृदयतापूर्ण दृष्टि से देखने की अपील उन्होंने अपनी रचनाओं में की है स्वयं अपने जीवन में भी वह बराबर उसी दृष्टिकोण को अपनाये रहे। जब जब किसी नारी से उनका सम्बन्ध परिस्थितिवश जुड़ा तब-तब केवल दो ही भावनाएँ उन्हें परिचालित करती रहीं—या तो आंतरिक करुणा या परिपूर्ण श्रद्धा। इन दो चरम भावों के मिश्रण से कभी-कभी एक तीसरा रङ्ग भी स्वभावतः उत्पन्न हो जाता होगा, पर मूल भाव वही थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है—उनके विवाह से सम्बन्धित घटना।

तब शरत्‌चन्द्र रंगून में किसी एक बंगाली होटल में रहते थे। एक दिन वह खाना खाकर दफ्तर की ओर जाने के लिये ज्योंही घर से बाहर निकले त्योंही अकस्मात् एक प्रायः अठारह-उन्नीस वर्ष की लड़की उनके सामने आकर खड़ी हो गई। लड़की कुछ हाँफ-सी रही थी। उसके मुख के भाव से लगता था कि वह किसी कारण से बहुत घबरायी हुई है और बड़े कष्ट में है। शरत्‌चन्द्र को देखते ही उसने कहा : "अरे बामुनदा, (बाम्हन भैया), तुम यहाँ कहाँ!" कहकर वह इस भाव से उनकी ओर देखने लगी जैसे किसी डूबते हुए को अप्रत्याशित रूप से किसी लकड़ी का सहारा मिल गया हो।

शरतचन्द्र आश्चर्य से उसकी ओर देखते रह गये। वह उसे नहीं पहचान पाये थे, हालाँकि उन्हें कुछ-कुछ लग रहा था कि लड़की को पहले कहीं देखा है।

"भूल गये बामुनदा ! कलकत्ते में सौरीन्द्र ठाकुर के यहाँ ......"

सहसा शरत् की स्मृति जग उठी। कलकत्ते में सौरीन्द्रनाथ ठाकुर के यहाँ संगीत की जो मजलिस अक्सर बैठा करती थी वहाँ कभी-कभी उस लड़की को भी उन्होंने देखा था। तब वह छोटी थी, पर अच्छा गाना सीख गई थी। तब उसका संगीत सुनने के अतिरिक्त और कोई जानकारी उसके सम्बन्ध में उन्हें नहीं थी।

"हाँ, हाँ, याद आ गया", शरत् ने कहा, "पर तुम यहाँ कैसे पहुँच गयीं ! यहाँ कब से हो और कहाँ रहती हो !"

उनके प्रश्न का कोई उत्तर देने के बजाय लड़की सहसा रो पड़ी और सिसकियां भरती हुई, अत्यंत व्याकुल भाव से, कातर प्रार्थना के स्वर में बोली : "मुझे बचाओ बामुनदा' ।"

शरत्चद्र चकित भाव से उसकी ओर देखते रह गये ! उसके बाद बोले : "पर तुम्हें हुआ क्या है ? बिना किसी संकोच के साफ साफ बताओ।"

लड़की उसी तरह फफकती हुई शंकित दृष्टि से चारों ओर देखने लगी। उसके बाद बोली : "तुम्हारा डेरा कहाँ है ! मेरे ऊपर दया करो बामुनदा' !" पहले मुझे अपने यहाँ आश्रय दो, तब सब बातें विस्तार से तुम्हें बताऊँगी।"

लड़की को साथ लेकर शरत्चंद्र अपने डेरे को वापस चले गये। डेरे पर पहुँचकर उन्होंने लड़की से कहा : "इस समय मुझे आफिस के लिये देर हो रही है। आफिस से वापस आने पर तुमसे फिर मिलूँगा। मुझसे जितना भी हो सकेगा, तुम्हारी सहायता करूँगा। सब हाल बाद में पूछूँगा। तुमने मेरा डेरा अब देख लिया है, शाम को सुविधा से मिलना।"

पर लड़की जैसे धरना देकर बैठ गयी। बोली : "मुझे चाबी देते जाओ। मैं अब यहाँ से हटने की नहीं। यहाँ से बाहर निकलने में मेरे लिये बहुत बड़ा खतरा है। तभी तो मैंने तुमसे आश्रय देने की बात कही थी बामुनदा' !"

शरत्चंद्र बड़े संकट में पड गये। एक ओर आफिस जाने के लिये देर हो रही थी, दूसरी ओर लड़की ने उन्हें घेर लिया था। लड़की की परिस्थितियों की कोई जानकारी उन्हें नहीं थी। होटल में वह अकेले रहते थे और स्वतंत्र जीवन बिताते थे। उस प्रायः अनजान लड़की को आश्रय देना दस आदमियों की कानाफूसी का पात्र बनने का खतरा मोल लेना था। पर वह लड़की वास्तव में किसी कारण से बहुत पीड़ित मालूम होती थी। मानव-चरित्र की गहराइयों से परिचित होने के कारण इतना तो वह एक क्षण में लड़की के रंग-ढंग देखते ही पहचान गये थे कि लड़की उनके हृदय में अपने प्रति करुणा और समवेदना जगाने के लिये कोई नाटक या स्वांग नहीं रच रही है और निश्चय ही उसे आश्रय की बहुत बड़ी आवश्यकता आ पड़ी है। पर दिन-भर सोचने का समय यदि मिल जाता तो वह शाम को उसके लिये कोई-न-कोई प्रबन्ध अवश्य कर देते। किन्तु वह तो अभी से आश्रय चाहती है! ऐसी स्थिति में क्या करना उचित है, उनकी समझ में कुछ नहीं आता था।

"पर तुमने बताया नहीं कि बात क्या है ?" उन्होंने अपने सहज-सहृदय स्वर में पूछा।

"मेरे पिताजी कुछ गुंडों के हाथ मुझे बेचने के फेर में हैं।" भर्रायी हुई आवाज में लड़की बोली, "इसीलिये मैं भाग कर कहीं छिपने के इरादे से इस तरफ आई थी। अब मेरे भाग्य से अचानक तुम मिल

गये हो, बामुनदा', मुझे इस संकट से बचाओ। मुझे अपने यहाँ शरण दो!" कहती हुई लड़की फिर रो पड़ी।

शरत् की सारी द्विविधा जाती रही। उन्होंने सबसे पहला काम यह किया कि होटल में लड़की के लिये भोजन का प्रबन्ध किया। उसके बाद लड़की के हाथ में चाबी सौंपते हुए बोले : "तुम निश्चित होकर यहाँ आराम करो। मैं आफिस से लौट कर फिर तुमसे मिलूँगा और तब सारी परिस्थिति को विस्तृत रूप से जानकर तुम्हारी मुक्ति के लिये कोई बात उठा नहीं रखूँगा, विश्वास करो।"

यह कहकर वह आफिस चले गये। पर मन उनका बहुत भारी था और किसी अज्ञात आशंका से अशांत था। इसलिये अधिक देर तक आफिस में काम न कर सके, छुट्टी लेकर जल्दी ही डेरे पर वापस चले आये। डेरे पर पहुँचते ही उन्होंने देखा कि उनके कमरे के बाहर पुलिस पहरा दे रही है। कोई उपाय न देखकर वह लौटकर अपने एक मित्र के पास चले गये। उनके वह मित्र महोदय एक महत्वपूर्ण सरकारी पद पर नौकर थे। शरत्चन्द्र ने उनको सारी स्थिति समझाई। वह शरत्चन्द्र को लेकर पुलिस के एक प्रमुख अफसर के पास गये, जो अँग्रेज था। अफसर को उन्होंने समझाया कि लड़की अपने नीच, पतित और लोभी पिता के चंगुल से बचना चाहती है और शरतचन्द्र ने केवल उसकी रक्षा के उद्देश्य से ही अपने यहाँ आश्रय दिया है।

साहब सारी स्थिति समझकर उन लोगों के साथ हो लिया और शरतचन्द्र के डेरे पर पहुँचकर उसने तत्काल वहाँ से पुलिस का पहरा हटा दिया। साहब के चले जाने पर लड़की के पिता निवारण चक्रवर्ती ने शरत् और उनके मित्र से कहा : "मेरी लड़की आप लोगों के आश्रय

में रहे, मुझे कोई आपत्ति इसमें नहीं है। पर मुझे आप लोग दो सौ रुपया नकद और आने जाने का खर्च दे दीजिये

"आप सारी बात स्पष्ट शब्दों में समझाकर कहिये," शरत्चन्द्र के मित्र महोदय बोले।

"बात यह है कि मैंने इस लड़की को अकयाब में जिस आदमी के हाथ दो सौ रुपये पर बेचा था उसके यहां से यह भागकर चली आई है। अब वह आदमी मुझे परेशान कर रहा है और उसके साथी मेरे पीछे लगे हुए हैं। दो सौ रुपया न मिलने से मेरे लिये जान का खतरा है ....."

उस आदमी की नीचता और निर्लज्जता से शरत्चन्द्र और उनके साथी अपने को हतप्रभ सा अनुभव करने लगे। वे जानते थे कि वह दो सौ रुपया स्वयं अपने शराब आदि के खर्चे के लिये चाहता है। अपने क्षणिक स्वार्थ की पूर्ति के पीछे वह इस कदर अंधा होकर फिर रहा है कि चंद चांदी के टुकड़ों के लिये स्वयं अपनी लड़की की दुर्गति को चरम सीमा तक पहुंचाने पर भी तनिक भी संकोच का अनुभव नहीं कर रहा है। उस नीच को कुछ दिये दिलाये बिना किसी प्रकार निस्तार सम्भव नहीं है, यह सोचकर शरत्चंद्र और उनके साथी ने मिलकर दो सौ रुपयों का प्रबंध करने और आने-जाने का खर्चा भी देने का वचन दिया।

जब शरत्चंद्र के कहने पर लड़की ने भीतर से दरवाजा खोला तब निवारण भी उन लोगों के पीछे-पीछे भीतर घुस गया। उसे देखते ही लड़की अत्यंत भीत हो उठी। व्याकुल भाव से रोती हुई बोली: "आप लोग मुझे उनके हाथ न सौंपें, मैं आप लोगों के पैर छूकर प्रार्थना करती हूँ।"

शरत् ने उसे दिलासा दिया और समझाया कि चिंतित होने की कोई बात नहीं है। उसके बाद उन्होंने निवारण से कहा कि वह कल आकर रुपया ले जाये। निवारण चला गया।

लड़की की आँखों से टप टप आँसू गिरते जा रहे थे और उनका अक्षय भंडार समाप्त ही नहीं होता था। आँसुओं को पोंछती हुई बोली : "इस फूटे भाग्य में अभी जाने क्या क्या बदा है। जब मैं आठ बरस की थी तभी विधवा हो गई थी। जब कुछ बड़ी हुई, सास ने एक आदमी के हाथ मुझे बेच दिया। वह आदमी मुझे कलकत्ते ले गया। वहाँ कई अड्डों की हवा खिलाने के बाद सौरीन्द्रनाथ ठाकुर के यहाँ मुझे छोड़ आया। कुछ समय बाद वहाँ से भागकर मैं अपने इन्हीं निर्लज्ज पिता के पास चली आई। इन्होंने बर्मा आकर अकयाब के मुसलमानों के हाथ मुझे बेच दया। सात दिनों तक मैं उन लोगों के यहाँ बंद रही। उसके बाद एक दिन मौका मिलने पर वहाँ से भागकर पैदल चलकर रंगून आयी हूँ। अगर अब भी मुझे कोई अच्छा आश्रय न मिला तो मैं गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँगी, इतना आप लोग जाने रहिये..."

शरत्चंद्र और उनके मित्र महोदय स्तब्ध हृदय से उस लड़की की तीखी दर्द-भरी, दिल दहलानेवाली कहानी सुन रहे थे, जो कुसंस्कार-ग्रस्त संकीर्ण समाज की घोर नीचता और पतन का चित्र लोहे की जलती हुई सलाखों से उनके हृदय में अंकित कर रही थी।

बरबस निकलती हुई लंबी साँस को भीतर ही भीतर दबाने का प्रयत्न करते हुए शरत्चंद्र ने कहा : "अब बीती बातों को याद करने से कोई लाभ नहीं है। आगे इस प्रकार की कोई घटना नहीं घटने पायेगी, इस बात की जिम्मदारी हम लोग अपने ऊपर लेते हैं, इसलिये तुम निश्चिंत रहो।"

शरत्चंद्र के मित्र ने उन्हें अलग बुलाकर धीरे से कहा : "लकड़ी को तुम अभी अपने ही पास रखे रहो। मैं रुपयों का प्रबंध करता हूँ। कल

उसके नर-पिशाच पिता को रुपये देकर विदा कर देना। बाद में हम दोनों मिलकर इस अनाथिनी के लिये कोई ऐसा योग्य व्यक्ति ढूंढें जिससे विवाह होकर यह सम्मानित जीवन बिता सके....” कहकर वह चले गये।

शरत्‌चंद्र लौटकर लड़की के पास आये और अपने सहज-सहृदय और स्नेह सने स्वर में बोले : “यहाँ तुम अपना ही घर समझो। किसी प्रकार का संकोच न करना। तुम्हारे दोनों जून के भोजन और चाय का प्रबंध मैं होटलवाले से कहकर किये देता हूँ। मेरे साथ रहने में संकोच होता हो तो तुम अकेली इस कमरे में रह सकती हो, मैं इसी होटल में कोई दूसरा कमरा किराये पर ले लूँगा.....”

“न, न, न! ऐसी बात न कहो!” लड़की ने घबराहट के स्वर में कहा। “मैं जब अपने खोटे करमों से सात दिन तक गुंडों के बीच में बंद रह सकी तब तुम्हारे साथ रहने में क्या आपत्ति मुझे हो सकती है! और फिर यहाँ अकेली रह भी कैसे सकूँगी! चारों ओर से मुझे खतरा ही खतरा नजर आता है। मारे डर के एक ही रात में मेरे प्राण निकल जायेंगे!”

शाम को शरत् के मित्र महोदय रुपयों का प्रबंध करके आये और उनके हाथ में रुपये रखकर, कुछ देर तक बातचीत करने के बाद वापस चले गये।

दूसरे दिन निवारण चक्रवर्ती यथासमय उपस्थित हुआ। शरत्‌चंद्र ने उसके हाथ में पूरा रुपया गिन दिया। रुपया पाने पर उसका चेहरा खिल उठा। बोला : “आप लोगों ने मुझे बड़े संकट से बचा दिया। मैं आज ही उन गुंडों का हिसाब चुकता कर आता हूँ। आप सचमुच ‘भद्दर लोक’ (शरीफ आदमी), हैं।” कहकर वह चला गया।

उस हीन व्यक्ति के प्रति शरत् के मन में घोर घृणा कही भावना जमने के साथ ही उस पर तरस भी आ रहा था। वह मन ही मन सोचने लगे

कि जिस समाज में ऐसे भी पिता वर्तमान हो सकते हैं उसकी अधोगति किस सीमा तक पहुंच चुकी है, उसका ठीक-ठीक अनुमान लगा सकना भी कठिन है।

उस दिन आफिस में बड़ी अशांति से उन्होंने समय बिताया। जब लौटकर आये तब देखा कि निवारण दरवाजे पर खड़ा है। एक नयी आशंका से घबराकर उन्होंने पूछा : "अब आपका यहाँ क्या काम शेष रह गया है?"

"कुछ नहीं, मैं अंतिम बार के लिये लड़की से विदा होने आया हूँ," कुछ खिसियायी हुई सी मुख मुद्रा से निवारण बोला। उसके मुँह से शराब की मंद-मंद गंध आ रही थी।

शरत् आश्वस्त हुए। उन्हें आशंका थी कि कहीं वह नराधम उन्हीं गुंडों को, जिनके यहाँ से लड़की भाग आयी थी, फिर से बुलाकर एक नया उत्पात न मचा बैठे। शरत् ने दरवाजा खटखटाया। लड़की ने भीतर से पूछा कि कौन है। जब शरत् का उत्तर सुनकर उसे इतमीनान हो गया कि उसका पिता या और कोई गुंडा नहीं है तब उसने किवाड़ खोल दिया। खोलने पर शरत् के साथ अपने पिता को अभी तक खड़ा देखकर वह घबराकर पीछे हट गयी और व्याकुल स्वर में शरत् से बोली : "उनसे पूछिये कि वह अब क्या चाहते हैं?"

शरत् ने स्निग्ध मुसकान के साथ कहा : "घबराओ नहीं। वह तुमसे अंतिम बार के लिये विदा होने आये हैं।

"मुझसे कतराओ मत माँ," ससंकोच दो कदम आगे बढ़ते हुए निवारण ने रुँधे हुए गले से अपनी लड़की को स्नेहपूर्वक संबोधित करते हुए कहा—"मैं तुमसे अंतिम बार के लिये विदा हो रहा हूँ। अब तुम्हें इस जीवन में कभी कोई कष्ट न दूँगा। तुम्हारे साथ मैंने बहुत अन्याय किया

है। अपनी हीन परिस्थितियों से तंग आकर तुम्हें गुंडों के हाथ सौंपने में मुझे संकोच न हुआ। मैं जानता हूँ, मेरे इस अक्षम्य अपराध के लिये तुम मुझे कभी क्षमा न कर सकोगी। एक ही बात का संतोष मुझे है। अंतिम विदाई के समय तुम्हें ऐसे हाथों में सौंपे जा रहा हूँ, जहाँ तुम सुख और सम्मान से जीवन बिता सकोगी। मैं जा रहा हूँ। कहाँ जाऊँगा, स्वयं नहीं जानता। केवल इतना जानता हूँ कि जहाँ भी जाऊँ, मेरा अपराधी मन अब एक बहुत बड़े भार से मुक्त रहेगा...” कहते हुए उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े।

लड़की के सिर पर आशीर्वाद के रूप में हाथ रखकर और शरत् के प्रति स्नेह और श्रद्धा से हाथ जोड़कर निवारण चक्रवर्ती चला गया। उसके चले जाने पर लड़की की आँखें डबडबा आयीं, पर साथ ही एक बहुत बड़ा संकट टला जानकर उसने चैन की लंबी साँस ली। शरत् की आँखें भी एक हलके वाष्प से गीली हो आयी थीं। मानव-चरित्र की विचित्रता और आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों की दयनीयता का एक निर्मम रूप से ज्वलंत उदाहरण उनके आगे प्रत्यक्ष हो गया। सोच-सोचकर वह व्याकुल और विभ्रांत हो उठे।

लड़की ने आँखें पोंछते हुए कहा : “एक बहुत बड़ी बला टल गयी, इसलिये मैं प्रसन्न हूँ। फिर भी सोचती हूँ कि कितने बड़े अभागे हैं यह! माँ के मरने के बाद से इनका यही हाल है। तभी से यह शराब पीने और बुरी सोहबत में रहने लगे थे। शराब पीने की लत इस सीमा तक पहुँच गयी थी कि चौबीसों घंटे नशे में चूर रहते थे। एक तो स्वभाव से ही निकम्मे, तिस पर शराबखोरी। इसलिये रोजगार का कोई ठिकाना कहीं नहीं लगा पाते थे। मुझे बेचकर कब तक अपना गुजारा कर पाते! पता नहीं, किन शोहदों के साथ किन हीन उपायों से इतने दिनों तक किसी

तरह गुजर करते रहे हैं। मैं तो जन्म की अभागिनी हूँ ही, पर यह मुझसे भी हजारगुना अभागे निकले !" कहती हुई वह फिर बरबस रो पड़ी।

शरत् ने उसे दिलासा देते हुए कहा : "अब तुम्हें उन्हें भूल जाना होगा। इस तरह सोचती रहोगी तो पागल हो जाओगी..."

दिन बीतते चले गये। लड़की अपनी नयी परिस्थिति पर गंभीर रूप से विचार करने लगी। जिस व्यक्ति के आश्रय में वह बिना पूर्व योजना के अचानक ही दैवयोग से आ पड़ी थी, उसके स्वभाव और चरित्र का अध्ययन वह बड़ी बारीकी से करने लगी। दिन पर दिन उसके मन में यह धारणा दृढ़ होती जा रही थी कि इस बार जिस व्यक्ति के निकट सम्पर्क में वह आयी है वह अत्यंत सहृदय, उदार-स्वभाव और साधु पुरुष है। शरत्चंद्र केवल उसके खाने-पीने, पहनने और रहने की सुविधा का ही ध्यान नहीं रखते थे, बल्कि इस बात का भी पूरा खयाल रखते थे कि उनकी किसी भी बात से उसके हृदय के सैकड़ों पिछले घावों में से एक भी हरा न हो जाय। वह उसके प्रति अपने व्यवहार में केवल शालीनता और शिष्टता ही नहीं बरतते थे, बल्कि उसके प्रति आंतरिक सम्मान का भाव प्रदर्शित करते रहते थे। उस चिर-दुःखिनी और आजन्म निर्यातित नारी के लिये यह एकदम नया, अप्रत्याशित और अविश्वसनीय अनुभव था। शरत् की शिष्टता और सहृदया उसके अंतर के भी अंतर में अज्ञात में घर करती जाती थी। फलस्वरूप उसके भाव-जगत् में एक नया ही रासायनिक तत्त्व उत्पन्न होने लगा। एक नया ही बीज नयी पौष्टिक खाद पाकर उसके अनजान में उसके भीतर अंकुरित होने लगा। शरत् के प्रति कृतज्ञता और श्रद्धा के अतिरिक्त एक तीसरी ही भावना धीरे-धीरे उसके मन और प्राणों को छाने लगी। उसके प्रेम-वंचित, बुभुक्षित नारी हृदय में शरत् के प्रति एक सच्ची स्नेह-भावना जागरित होने लगी थी। उसकी

मां की मृत्यु कभी हो चुकी थी—जब वह बहुत छोटी थी। आठ साल की उम्र में उसका विवाह भी हो गया था और उसी वर्ष वह विधवा भी हो गयी थी। सास ने किसी दूसरे के साथ बेच दिया और दूसरे ने तीसरे के हाथ। सारे चक्करों व घबराहट से भागकर जब पिता के पास आयी तो वह उन सबसे अधिक नराधम सिद्ध हुआ। इस तरह संसार में कहीं स्नेह रस की एक बूँद भी इस चिर-तृषित चातकी को शरत् के पास आने के पूर्व तक नहीं मिली थीं। शरत् के यहाँ पहली बार उसने जाना कि सच्चा स्नेह क्या होता है और उसे प्राप्त कर सकना कितने बड़े सौभाग्य की बात है।

एक दिन जब शरत् आफिस से लौटने पर उसके साथ एकांत में चाय पी रहे थे तब वह बोली : "इस तरह होटल का खाना खाकर कब तक चलेगा ? अलग प्रबंध क्यों नहीं कर लेते ?"

"अलग प्रबंध करने का झंझट कौन पाले ! होटल में बिना किसी परिश्रम के चाय और भोजन तैयार मिलता है। इसी तरह चलने दो न !"

"झंझट के डर से होटल का सड़ा-गला, गंदा-बासी और रूखा-सूखा खाना खाते चले जाओगे तो तुम्हारे स्वास्थ्य का क्या हाल होगा ! इधर कुछ दिनों से मैं देख रही हूँ, तुम्हारी तन्दुरुस्ती दिन पर दिन गिरती चली जा रही है। और फिर झंझट काहे का है ! आखिर मैं यहां किस लिये हूँ ! अपने हाथ से रसोई बनाकर दो जून तुम्हें खिलाने की इच्छा उसी दिन से मेरे मन में हो आयी थी जिस दिन मैंने तुम्हारे कमरे में पांव रखा था। पर जैसा फूटा भाग लेकर मैं जनमी हूँ, उससे इस बात पर विश्वास ही नहीं होता था तुम्हारे यहाँ दो दिन के लिये भी आश्रय पा जाऊँगी। अब जब इतने दिनों तक तुमने बिना किसी आपत्ति के मुझे अपने पास रहने दिया है तब आज इतना साहस मुझे हो आया है

कि तुमसे कहूँ। बोलो, मेरी इतनी सी बात क्या नहीं मानोगे? मैं पांवों पड़ती हूँ, इस होटल को जल्दी छोड़ो और अपना कह करो।"

उसका आग्रह देखकर शरत् का सारा आलस्य जाता रहा। आवेग के साथ कहा: "तुम जब इतना चाहती हो तब मैं कल ही मकान की तलाश में जुट जाऊँगा।"

उस होटल में लड़की को और एक कारण से चिढ़ थी। यद्यपि भरसक सब समय अपने ही कमरे में बंद रहती थी, तथापि कभी अत्यन्त आवश्यक कामों से बाहर निकलना ही पड़ता था। होटल में खाना तक सबके लिये एक ही था। और उन अवसरों का लाभ कर कुछ शोहदे उसकी ओर बुरी तरह घूरा करते थे, जो उसे अप्रिय लगता था। वे लोग निश्चय ही उसके संबंध में तरह-तरह धारणाएं मन में बनाये हुए होंगे।

पर दूसरे दिन आफिस के घंटों के अलावा जितना समय शरत् को मिला उतने में कहीं अपने रहने के उपयुक्त किसी खाली स्थान का पता वह नहीं लगा पाये। और तीसरे दिन वह सचमुच बीमार पड़ गये। वही बात हुई जिसकी आशंका लड़की को कुछ दिनों से हो रही थी। इतने दिनों तक वह स्वतंत्र और दायित्वहीन जीवन बिताने के आदी थे। आगे नाथ न पीछे पगहा वाली हालत थी। पर जब से वह लड़की उनके आश्रय में आयी अब से उनके चिर-चंचल पाँव बंध से गये थे और वह उसके प्रति एक गंभीर-उत्तरदायित्व का अनुभव करने लगे थे। एक ओर इस अनभ्यास की प्रतिक्रिया उनके भीतर चल रही थी और दूसरी ओर होटल का असंतुलित और अस्वास्थ्यकर भोजन तो था ही। बहुत दिनों से घात में बैठे हुए रगूनी मलेरिया का जो पूरा प्रकोप उन पर हुआ तो वह थरहरा कर गिर पड़े।

लड़की ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर उनकी सेवा की और सारा संकोच त्याग कर होटल के मैनेजर तथा दूसरे भले आदमियों की भी सहायता से उनकी चिकित्सा का प्रबंध किया।

प्रायः एक सप्ताह बाद शरत् ज्वर से पूर्णतया मुक्त हो पाये। पर कमजोरी और एक सप्ताह तक बनी रही। शरत् का मनोवैज्ञानिक गठन ही सम्भवतः कुछ इस ढंग का था कि इस तरह के संकट के अवसरों पर वह जैसे ज्वर को अपने पास बुला लेते थे। और आश्चर्य यह है कि ज्वर की उस स्थिति में उनके अवचेतन मन ने उनकी तात्कालिक संकटपूर्ण समस्या का हल भी निकाल लिया। उस कारण मानसिक अवस्था में उनके भीतर एक आश्चर्यजनक स्वस्थ प्रवृत्ति न जाने अंतर्मन के किन रहस्यमय नियमों के क्रम से जग उठी। फल यह देखने में आया कि उस निराश्रय लड़की के आने के बाद से जिस अशांति, असमंजस और दुविधा ने उन्हें जकड़ रखा था वह ज्वर टूटते ही काफूर हो गई।

जिस दिन सुबह को पहली बार ज्वर का लेश नहीं रहा उस दिन लड़की ने उनके सिर पर धीरे से हाथ फेरते हुए स्नेह-सने स्वर में पूछा: "सिर का दर्द कैसा है?"

शरत् ने उसकी ओर कृतज्ञता भरी दृष्टि से देखते हुए अत्यन्त क्षीण स्वर में उत्तर दिया: "अब अच्छा है। अब मुझे कोई कष्ट नहीं है। ज्वर की हालत में भी मुझे कुछ कष्ट हुआ या नहीं, यह मुझे याद नहीं आता। लगता है कि मेरा सारा कष्ट तुमने किसी जादू के बल से अपने ऊपर ले लिया"

लड़की सचमुच चौबीसों घंटे की परिचर्या के कारण बहुत दुर्बल हो गई थी। उसकी आँखों के नीचे काली झाँई पड़ गई थी। दाहिने

हाथ से शरत् के कपाल पर धीरे से हाथ फेरती हुई और बाएँ हाथ से साड़ी के पल्ले से संतोष के आंसू पोंछती हुई वह बोली : "मुझ अभागिनी का इतना बड़ा सौभाग्य कहां है कि मैं तुम्हारे सब कष्ट अपने ऊपर ले सकूँ !"

"तुम अभागिनी नहीं हो," शरत् ने उसी क्षीण स्वर में कहा, "तुम लक्ष्मी हो ! तुम सोना हो, खरा सोना ! इसीलिए मैं आज से तुम्हारा नया नाम रखता हूँ—हिरण्यमयी। 'हिरण्य' माने सोना होता है। खरे सोने के बाहर चाहे कितनी ही मैल जम जाय पर उसके भीतर मैल का एक कण भी प्रवेश नहीं पा सकता। और वह बाहरी मैल जब चाहो तब साफ हो सकता है। तुम्हारे भीतर का खरा सोना मैं देख चुका हूँ, हिरन, इसलिये तुम्हारे बाहरी जीवन में परिस्थितियों के कारण जो थोड़ी बहुत गन्दगी आ भी गई होगी उसके कारण तुम्हारे भीतर का असली, उज्वल और चमकता हुआ रूप मुझसे छिपा नहीं रह सकता, इतना तुम जान लो !"

हिरण्यमयी को जीवन में पहली बार एक ऐसा पुरुष मिला जिसने उसके बाहर के सभी गन्दे और विचित्र लिबासों के भीतर छिपी हुई यथार्थ नारी को अपनी पैनी अंतर्दृष्टि से देख लिया। उसकी समझ में नहीं आता था कि वह किन शब्दों में, किस सांकेतिक भाषा में अपने अंतर की कृतज्ञता उस उदार, संवेदनशील और सहृदय पुरुष के आगे व्यक्त करे। वह सहसा उठी और शरत् के दोनों पांवों पर अपना सिर रखती हुई गीले स्वर में बोली : "ऐसा न कहो ! ऐसा न कहो ! मैं बहुत नीच हूँ, बहुत पतित हूँ ! मेरे पापों का, मेरे दुष्कर्मों का अन्त नहीं है !"

"तुम अपनी महानता से स्वयं परिचित नहीं हो सकती हो, हिरन," बहुत ही धीरे से, अत्यन्त शान्त स्वर में शरत् ने कहा। "पर जिस

व्यक्ति की आंखों के आगे उस महानता की बिजली एक बार कौंध चुकी है, उसे भ्रम नहीं हो सकता।"

हिरण्यमयी केवल नीरव भाव से शरत् के दोनों पांवों को अपने आंसुओं से धोती रही।

चलने-फिरने योग्य बल प्राप्त करने में शरत् को प्रायः एक सप्ताह और लग गया। जिस दिन वह बीमारी के बाद पहली बार शाम को कुछ दूर टहलने के लिये गये, उसी दिन लौटकर डेरे पर पहुँचते ही उन्होंने हिरण्यमयी से कहा : "आज मैंने तुम्हारे लिए एक वर ढूँढ लिया है!......."

"चलो हटो! इस तरह की बात मुझसे कहते तुम्हें लाज नहीं आती!" कृत्रिम क्रोध से हिरन बोली।

"नहीं हिरन यह बात नहीं है," काफी गंभीरता के साथ शरत ने कहा। "मैं परिहास नहीं कर रहा हूँ। और इसमें बुरा मानने की क्या बात है? क्या तुम यह नहीं चाहती हो कि तुम किसी ऐसे आदमी के साथ स्थायी सामाजिक संबंध में बँध जाओ जो तुम्हारे प्रति सहृदय हो और तुम्हारी इज्जत करता हो?"

इस बार हिरण्यमयी विस्मय-उत्सुक भरी दृष्टि से एकटक शरत् की ओर देखती रह गयी। शरत् किस रहस्य-भरी भाषा में बात कर रहे हैं, यह उसकी समझ में ठीक से नहीं आ पाता था, फिर भी उसका अंतर्मन उसे बता रहा था कि कुछ ऐसी बात अवश्य सामने आनेवाली है जो उसके आज तक की जीवन-धारा को एक बिलकुल ही नयी दिशा की ओर मोड़ सकती है। पर वह नयी दिशा कौन हो सकती है और उसका ठीक-ठीक स्वरूप क्या है, इसका स्पष्ट आभास उसे नहीं मिल रहा था।

वह अपनी मौन दृष्टि को शरत् की ओर गड़ाये रही, जैसे शरत् के प्रश्न के उत्तर की प्रत्याशा स्वयं शरत् ही से कर रही हो।

"बोलो हिरन, मेरे प्रश्न का उत्तर दो!" शरत् ने अत्यंत आग्रह के साथ अपने सहज-सहृदयतापूर्ण कोमल स्वर में कहा।

"मैं तुम्हारी बात का कुछ भी अर्थ ठीक से नहीं समझ पा रही हूँ", शरत् की ओर आधी दृष्टि से देखती हुई हिरन बोली। "जिस आदमी को मैंने न कभी देखा हो, न जिसके संबंध में कुछ सुना हो, उसके बारे में मैं क्या कह सकती हूँ!"

"और अगर ऐसे आदमी का नाम मैं लूं, जिसे तुमने देखा है और जिसे बहुत कुछ समझने का अवसर भी तुम्हें मिला है?"

"जैसे?"

"जैसे मैं ही हूँ! अगर मैं कहूँ कि मैं तुमसे विवाह करके तुम्हारे साथ स्थायी संबंध जोड़ना चाहता हूँ तो तुम क्या उत्तर दोगी?" कहते हुए शरत् धड़कते हृदय से उसके मुख के भाव के प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म परिवर्तन पर बड़ी बारीकी से गौर कर रहे थे।

हिरण्यमयी कुछ देर तक आँखें फाड़-फाड़कर उनकी ओर विस्मय और अविश्वास भरी दृष्टि से देखती रही।

शरत् ने सहसा उसका दाहिना हाथ पकड़ लिया और धीरे से उसकी उँगलियों से खेलते हुए बोले: "बोलो हिरन! मैं इस प्रश्न का उत्तर तुम्हारे मुँह से सुनने के लिये बहुत अधीर हूँ ......"

हिरन के पत्थर के आँसू सहसा पानी में बदल गये। बड़ी-बड़ी बूँदें

गिराती हुई, नीचे की ओर देखती हुई वह बोली : "क्या तुम सचमुच मुझे अपने इतने बड़े सौभाग्य की बात पर विश्वास करने को कहते हो ?"

शरत् का चेहरा पूरे उल्लास से चमक उठा। "तुमसे बड़े सौभाग्य की बात यह मेरे लिये होगी, हिरन, मैं सच कहता हूँ।" और उन्होंने बच्चों की सी चपलता से उसका दूसरा हाथ भी पकड़ लिया।

और इसके बाद एक दिन दोनों का विवाह शैव विधि से हो गया।

हिरण्यमयी सचमुच शरत्चन्द्र के लिये 'हिरण्य'-(स्वर्ण-) मयी साबित हुईं। उनसे विवाह होने के कुछ ही समय बाद से शरत्चन्द्र के साहित्यिक और आर्थिक भाग्य का सितारा चमक उठा। तब तक साहित्य-क्षेत्र में नियमित रूप से प्रवेश करने का कोई विचार उनका नहीं था। पर इस बीच उनके कुछ कलकत्ता निवासी बन्धुओं ने उनकी कहानियों की कुछ अप्रकाशित पांडुलिपियाँ—जिन्हें शरत् ने बिना किसी शर्त के उन लोगों को प्रदान कर दिया था—विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित होने के लिये भेज दीं, जिनमें 'बड़ी दीदी' (बड़ी बहन) नाम की कहानी भी थी। उन रचनाओं के छपते ही साहित्य-संसार में हलचल मच गयी। इसी बीच उनके एक मित्र ने 'यमुना' नाम की नयी पत्रिका के लिये एक कहानी लिख भेजने के लिये उन्हें बहुत विवश किया। उन्होंने 'रामेर सुमति' नाम की एक कहानी लिखकर भेजी। उस कहानी के छपते ही शरत् की साहित्यिक प्रतिभा की ख्याति बड़ी तेजी से चारों ओर फैल गयी।

और सबसे बड़े संयोग की बात यह कि ठीक इसी समय किसी कारण से आफिस के साहब से शरत् की कहा सुनी—बल्कि हाथापाई—हो गयी और उसके दो-ही-एक दिन बाद कलकत्ते के सबसे बड़े प्रकाशक गुरुदास

चटर्जी एंड संस के यहाँ से उन्हें साहित्यिक क्षेत्र में काम करने के लिये अच्छी नौकरी का 'आफर' मिल गया। इससे अच्छा सुयोग शरत्चन्द्र को दूसरा नहीं मिल सकता था। कुछ मित्रों से रुपया उधार करके वह एक दिन हिरण्यमयी के साथ जहाज में बैठकर, बर्मा को सदा के लिये प्रणाम करके कलकत्ते के लिये रवाना हो गये।

और तभी से शरत् के चिर-अव्यवस्थित और आर्थिक दृष्टि से अकिंचन जीवन का स्वर्णयुग अरम्भ हुआ।

गेटे का असफल प्रेम

हमारी कथा का सम्बन्ध उस समय से है जब विश्व-विख्यात जर्मन कवि गेटे की अवस्था २३ वर्ष की थी और वह वेत्सलर नामक जर्मन नगर में कानून की शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से गया हुआ था। यह सन् १७७२ की बात है। तब तक उसकी कोई भी साहित्यिक कृति प्रकाशित नहीं हुई थी। उसका पहला नाटक 'गेत्स' तब प्रायः लिखा जा चुका था, पर प्रकाशित नहीं हुआ था। प्रकाशित न होने का एक कारण यह भी था कि वह स्वयं अपनी उस रचना से सन्तुष्ट नहीं था। उस युग में गेटे के तरुण कवि-हृदय के भीतर जीवन और जगत् के सम्बन्ध में गहन तथा मौलिक भावों और विचारों के ऐसे तूफान उठ रहे थे जिन्हें किसी एक कलात्मक रचना के भीतर सम्मिलित रूप से व्यक्त किये बिना उसे चैन नहीं मिल रहा था। प्राचीन और समकालीन साहित्य के अध्ययन के साथ ही वह प्रत्यक्ष-अनुभूत जीवन की गहराइयों में प्रवेश कर चुका था और युग की धड़कन को अपने समसामयिक कवियों और मनीषियों की अपेक्षा अधिक तीखेपन के साथ अपने अंतर में अनुभव कर रहा था। मानवता द्वारा युग-युग से संचित ज्ञान का परिचय प्राप्त करने के साथ ही वह अठारहवीं शती के उस विशेष युग में उठने वाली उस नयी और प्रगतिशील विचारधारा के रस में भी बूड़ चुका था जो विशेष रूप में वालतेयर और रूसो की लेखनियों से निःसृत होकर सारे यूरोप को धीरे-धीरे छाती चली जा रही थी। फ्रांस में क्रांति की आग लग चुकी थी। और उसकी चिनगारियां यूरोप के तरुण प्राणों को छूने लगी थीं। गेटे के समान महान् प्रतिभाशाली और अनुभूतशील नवयुवक पर उन सब

नये विचारों का कोई प्रभाव न पड़े यह कैसे संभव हो सकता था ! पर दूसरे युवकों में और उसमें अंतर था । उसका पिछले युगों के साहित्य क अध्ययन ऐसा विशाल और गंभीर था और जीवन से संबंधित अपने निजी अनुभव ऐसे निगूढ़ थे कि वह किसी भी नयी भावधारा के प्रवाह में सहज में बह नहीं सकता था, भले ही वह उनसे प्रभावित हो ।

जो भी हो, इन सब सम्मिलित कारणों से उसके भीतर बड़ी उथल-पुथल मची हुई थी और वह कुछ समय के लिये परिपूर्ण मानसिक विश्राम की आवश्यकता महसूस कर रहा था । वेत्सलर में वह आया तो था कानून संबंधी व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से, पर वास्तव में वह कुछ भी न करके केवल अपने अंतर के भाव-जगत् में पूर्णतः मग्न रहने, और अंतःप्रकृति और बाह्य-प्रकृति में परिपूर्ण साम्य स्थापित के प्रयत्न में एक प्रकार का निर्विकार और निश्चेष्ट जीवन बिता रहा था ।

पर उस चेष्टित निश्चेष्टता की कृत्रिम शांति के बीच में सहसा एक ऐसा अशांत तूफान आ खड़ा हुआ जिसने उसके अंतर के प्रत्येक अणु-परमाणु को बुरी तरह हिला दिया । चार्लोट नाम की एक षोड़सी लड़की से उसका परिचय हो गया, जिसका परिणाम उसके लिये घातक सिद्ध होते-होते रह गया ।

चार्लोट (या केवल 'लोट') एक सुसंस्कृत मध्यवर्गीय परिवार की सुशिक्षित लड़की थी । वह सुन्दरी भी थी । शिक्षा, संस्कृति और सुन्दरता के अलावा उसमें एक और विशेष गुण की स्थापना हो गयी थी, जो गेटे जैसे अंतर-पारखी के लिये सबसे अधिक आकर्षक सिद्ध हुआ था । गेटे के वेत्सलर आने के दो वर्ष पूर्व ही लोट की माँ मर चुकी थी, और घर के छोटे-छोटे बच्चों की देख-रेख का सारा भार उसी पर आ पड़ा था । इसलिये सोलह वर्षीया सुन्दरी कुमारी लोट में अन्यान्य गुणों के अतिरिक्त

मातृत्व की भावना का सुन्दर विकास भी हो चुका था। एक अवस्था-प्राप्त नारी में (विशेषकर जो माँ भी हो) मातृत्त्व की सहज अभिव्यक्ति उतनी आकर्षक नहीं होती, जितनी वह एक ऐसी किशोरी कुमारी या नवयुवती में होती है जिसे अभी तक वैवाहिक जीवन का तनिक भी अनुभव न हुआ हो। गेटे ने स्वयं अपनी आत्मकथा में इस तथ्य को स्वीकार किया है। गेटे प्रथम दर्शन से ही उस पर मुग्ध हो चुका था, और बाद में उसके सभी गुणों का परिचय मिलने पर वह और अधिक तीव्रता से उसके प्रेम में डूब गया।

पर दुर्भाग्य से उसके प्रेम के उस तूफानी आवेग का कोई गहरा प्रभाव लोट पर नहीं पड़ पाता था। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि गेटे से मिलने के पहले ही लोट की सगाई केस्टनर नामक एक व्यक्ति से हो चुकी थी। केस्टनर बहुत ही सभ्य, सुसंस्कृत और शांत स्वभाव का व्यक्ति था। वह गेटे से केवल एक वर्ष बड़ा था और किसी एक राज-दूतावास में सेक्रेटरी के पद पर काम करता था। लोट केवल सामाजिक बंधन में बँधने के कारण ही नहीं, बल्कि केस्टनर के व्यक्तित्व की विशेषता के कारण भी उसे हृदय से चाहती थी। ऐसी स्थिति में जब गेटे से उसका परिचय हुआ तब उसकी कविजनोचित प्रतिभा और आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होने पर भी उसके प्रति किसी तरह के हार्दिक लगाव का अनुभव उसे नहीं हुआ।

कहानी को आगे बढ़ाने के पहले यह जान लेना अच्छा रहेगा कि गेटे और लोट का प्रथम मिलन किन परिस्थितियों में हुआ।

केस्टनर ने (जिससे लोट की सगाई हो चुकी थी) अपने एक मित्र को एक पत्र गेटे और लोट के प्रथम मिलन के सम्बन्ध में लिखा था।

उसका अनुवाद हम यहाँ पर देते हैं, जिससे सारी स्थिति समझ में आ जायगी :

"बात यह हुई कि स्त्रियों और पुरुषों के एक सम्मिलित नृत्य में गेटे शरीक हुआ था और वहाँ मेरी परिणीता लोट भी गई हुई थी। मैं बाद में पहुँचा था। मुझे किसी कारण से देर हो गयी थी और लोट अपने कुछ साथियों और संगिनियों के साथ दूसरी गाड़ी में चली गई थी। उसी गाड़ी में गेटे भी बैठा हुआ था। वहाँ उसने पहली बार लोट को देखा। वह बड़ा मनीषी और प्रतिभावान है और उसने प्रकृति को (उसके आध्यात्मिक और भौतिक दोनों रूपों में) अपने अध्ययन का विशेष विषय बनाया है। बहुत अधिक भावप्रवण और सुसंस्कृत होने के कारण वेत्सलर की किसी भी लड़की का व्यक्तित्व उसे पसन्द नहीं आया था। पर लोट को देखते ही वह तीव्रता से उसकी ओर आकर्षित हो गया। लोट का व्यक्तित्व वास्तव में आकर्षक है। उसकी आँखों में बसंत के एक सुहाने प्रात की सी चमक पायी जाती है। उस दिन उसकी आंखों की उज्ज्वलता स्वभावतः और भी अधिक मोहक थी, क्योंकि नाचना उसे बहुत भाता है। वह सादे किन्तु सुन्दर कपड़े पहने थी और एक संयत प्रसन्नता उसके मुख पर छायी हुई थी। गेटे ने रास्ते में चलते हुए निश्चय ही इस बात पर भी ध्यान दिया होगा कि प्राकृतिक सौंदर्य उस लड़की के कलात्मक प्राणों को सब समय गुदगुदाता रहता है। उसका बातें करने का सहज शालीन ढंग भी गेटे को अवश्य ही बहुत पसन्द आया होगा। उसे तब पता नहीं था कि लोट की सगाई मुझसे हो चुकी है। मैं एक तो देर में पहुँचा था और दूसरे, हम दोनों (लोट और मैं) बाहर एक दूसरे से केवल दो मित्रों के रूप में मिलते हैं, जिससे हमारे पारस्परिक सम्बन्ध का कोई ज्ञान किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं हो पाता।

"गेटे यद्यपि अक्सर बाहर से प्रसन्न दिखाई देता था, तथापि मैं जानता हूँ कि भीतर से वह बहुत उदास रहता था। पर उस दिन वह बाहर और भीतर दोनों ओर से प्रसन्न लगता था। स्पष्ट ही लोट ने उसे मोह लिया था। लोट के प्रति वह इस कारण और भी अधिक आकर्षित हो गया था कि वह (लोट) उसकी प्रशंसात्मक दृष्टि के प्रति उदासीन होकर नृत्य के आनन्द में केवल नृत्य के लिये ही तल्लीन थी। तब तक गेटे का संपर्क जिन तरुणियों से हुआ होगा वे निश्चय ही उसके आकर्षक और सुन्दर व्यक्तित्व के प्रति उदासीन नहीं रही होंगी। लोट ही ऐसी पहली नारी उसे मिली जिसने उसकी प्रशंसात्मक दृष्टि का कोई विशेष मूल्य नहीं माना। इससे गेटे के हृदय पर अवश्य चोट पहुँची होगी और चोट ने उसकी प्रेम-भावना को दबाने के बजाय और अधिक उभाड़ने में सहायता पहुंचायी।"

दूसरे दिन गेटे उसके घर पहुँचा। पहले दिन उसने लोट का शृंगारसमय रूप देखा था, दूसरे दिन उसके जीवन के उससे भी अधिक महत्वपूर्ण रूप—गार्हस्थिक जीवन में मां के-से रूप—से उसका परिचय हुआ। उस छोटी उम्र में अपने नन्हें-नन्हें भाई-बहनों को देख-रेख मां से भी अधिक प्यार और चिन्ता से करने वाली उस षोड़सी के नैतिक और चारित्रिक सौंदर्य का जो परिचय गेटे को मिला वह उसके शारीरिक सौंदर्य से कई गुना अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ। नवयौवन की वासंती आभा की जो प्रभातकालीन दीप्ति गेटे ने नृत्य के अवसर पर लोट के चेहरे पर झलकती हुई देखी थी वह उसके गार्हस्थिक जीवन की प्रशांत शारदीया संध्या की सी पीली और नीली छाया में उसे अपूर्व गौरव की गरिमा से मंडित लगी। गेटे पूरे प्राण-आवेग से उस पर मुग्ध हो गया।

लोट गेटे के आकर्षक व्यक्तित्व और उद्दाम कवि-रूप से अत्यंत प्रभावित हुई; पर उसके सहज नैतिक संस्कार और अंतःप्रज्ञा ने उसे गेटे

के प्रथम दर्शन में ही बता दिया था वह आकाश में दूर तक उड़ान भरने वाला और पाताल में गहरी पैठ रखने वाला कवि कभी उसके साथ स्थायी सम्बन्ध स्थापित करने की बात नहीं सोच सकता और वह केवल एक क्षणिक रोमांटिक भावना से प्रेरित होकर उसके प्रति कविजनोचित प्रेमोद्गार प्रकट रहा है। इसलिए कच्ची उम्र में ही उस परिपक्व नारी ने गेटे द्वारा प्रेरित अदम्य आकर्षण से अपने को बचाने में सफलता पा ली। फिर भी उस तरुण कवि का संग उसे अच्छा लगता था। गेटे रोज उसके पास आता था और वह अपने शांत-संयत व्यवहार से, मीठी-मीठी बातों से अपने प्रति उसके मोह को जगाये रहती थी। गेटे कभी बच्चों से खेलता, कभी उन्हें कोई कहानी सुनाता, और कभी लोट से रोमांटिक भाषा में बातें करता। लोट के मनोनीत पति केस्टनर से भी उसकी काफी घनिष्ठता हो गई थी। केस्टनर बहुत ही सुसंस्कृत रुचिवाला, शिष्ट और शांत व्यक्ति था। यह जानते हुए भी कि गेटे उसकी परिणीता पत्नी के प्रति आसक्त हो उठा है, उसने अपने व्यवहार में कभी ईर्ष्या का तनिक भी आभास व्यक्त नहीं होने दिया। वह वास्तव में गेटे का प्रशंसक हो उठा था और उससे जीवन और जगत् के सम्बन्ध में साहित्यिक दृष्टिकोण से बातें करने में वह बहुत आनंद पाता था। वह लोट को हर पहलू से परख चुका था और जानता था कि वह कभी गेटे को सीमा से आगे नहीं बढ़ने देगी। इसलिए वह इस सम्बन्ध में निश्चिंत था। गेटे के प्रेम की हताश स्थिति देखकर उसे स्वयं गेटे के लिए दुःख होता था। इसलिए इस प्रयत्न में वह तनिक भी त्रुटि नहीं होने देता था कि गेटे लोट और बच्चों के बीच हर तरह सुखी और स्वतन्त्र रहे।

पर उन लोगों के लाख प्रयत्न करने पर भी गेटे अपने को सुखी अनुभव नहीं कर पाता था। उसे लोट के परिपूर्ण प्रेम की आवश्यकता थी। वह चाहता था कि लोट तन से और मन से पूर्णतः उसे आत्मसमर्पित कर

दे। पर लोट केवल उसकी घनिष्ठ मित्र बने रहना चाहती थी। गेटे का साथ उसे अच्छा लगता था, उसकी बातें उसे मनोमोहक लगती थीं, और वह चाहती थी कि वह उन लोगों के बीच में बराबर रहे। गेटे के प्राणों की पीड़ा से वह अपरिचित हो, यह बात नहीं थी, पर वह चाहती थी कि वह अपने प्राणों की उस पीड़ा को प्रेम की कभी न बुझने वाली ज्वाला में अधिक तपाये नहीं, बल्कि उसे मधुर मैत्री के स्थायी सम्बन्ध में बदल दे। पर तरुण और भावुक कवि के लिए ऐसा कर सकना सम्भव नहीं हो रहा था।

अपनी परिस्थिति की असंभावना को अच्छी तरह महसूस करने के बाद भी गेटे लोट और केस्टनर के यहां जाता रहा और घर के सब लोगों का—विशेषकर बच्चों का—प्रिय पात्र बना रहा। पर बच्चे भी धीरे-धीरे यह अनुभव करते जा रहे थे कि 'हर डाक्टर गेटे' प्रारंभिक दिनों के उल्लास के साथ कहानी नहीं सुनाते; कहानी सुनाते सुनाते बीच-बीच में अनमने हो जाते हैं और कहानी के बीच की कड़ियां न जाने कहां गायब हो जाती हैं।

लोट उसकी उदासी को दूर करने के लिए बीच-बीच में पियानो पर बैठकर एक से एक हृदयोन्मादकारी तराने सुनाती। पर फल उलटा होता था। उन संगीत-लहरियों से गेटे के भीतर का तूफान शांत होने के बजाय सौ-सौ उच्छवासों से उमड़-उमड़ उठता था।

उस युग में जर्मन नारियाँ अधिक शिक्षित नहीं होती थीं, पर लोट ने अपनी सहज बुद्धिमत्ता से केस्टनर के संग का लाभ उठाकर साहित्य की कुछ सुन्दर और विख्यात कृतियों का परिचय प्राप्त कर लिया था और वह समय-समय पर गेटे से साहित्यिक वाद-विवाद में भी भाग लेती रहती थी। गेटे अक्सर प्रेम और प्रेम-जनित निराशा के विषय

को उठाकर आत्महत्या के पक्ष में बड़े-बड़े तर्क उपस्थित किया करता था। इस भय से भीत होकर कि कहीं गेटे स्वयं भी निराश होकर आत्म-हत्या का पथ न अपना ले, लोट और केस्टनर दोनों इस प्रकार की प्रवृत्ति के विरुद्ध नैतिक और आध्यात्मिक आपत्तियां उठाया करते थे। पर गेटे उनकी बात से तनिक भी प्रभावित नहीं होता था और कहा करता था कि "जब कोई हताश प्रेमिक आत्महत्या करता है तब मेरे मन में उस महान् और उच्च कोटि की भावुकता के प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न होती है।" वह कहा करता था कि आत्महत्या किसी कायर का नहीं बल्कि वीर का काम है!

प्रति दिन गेटे लोट के मोहक बंधन को छिन्न करने का प्रयत्न करता था और प्रतिदिन असफल होता था। अंत में एक दिन उसने जी कड़ा कर ही लिया। उसने निश्चय कर लिया कि वह वेत्सलर से चुपचाप भागकर उस स्थान को सदा के लिए त्याग कर चला जायगा। अपने इस निश्चय की कोई सूचना उसने किसी को नहीं दी। इस बात का तनिक भी आभास किसी को नहीं दिया कि वह सारा मोह छिन्न करने के उद्देश्य से जल्दी ही भाग जाना चाहता है।

वेत्सलर त्यागने के ठीक एक दिन पूर्व गेटे ने रात में लोट और केस्टनर के साथ ही खाना खाया। उन दोनों में से किसी को इस बात का पता नहीं था कि गेटे से उनका वह अंतिम मिलन है। खाना खाने के बाद इस विषय की चर्चा चल पड़ी कि मृत्यु के बाद मनुष्य की क्या स्थिति होती है। स्वयं लोट ने—न जाने किस टेलीपेथिक प्रक्रिया के फलस्वरूप गेटे की अंतर्भावना से अज्ञात ही में प्रभावित होकर—वह चर्चा चलायी। यह इत्तफाक ही की बात थी कि वे तीनों मौत के परे भी किसी-न-किसी रूप में जीवन के अस्तित्व पर विश्वास करते थे। बहुत

वाद-विवाद के बाद अन्त में यह निश्चय हुआ कि उन तीनों में से जो पहले मरेगा वह अपने जीवित मित्रों को परलोक से किन्हीं सांकेतिक उपायों द्वारा जीवन के उस पार की स्थिति से परिचित करावेगा। क्या लोट के अंतर्मन में अज्ञात रूप से यह आशंका थी कि गेटे अपने प्रेम की निष्फलता के कारण आत्महत्या करेगा? केस्टनर की डायरी से पता चलता है कि गेटे के चेहरे पर उस दिन एक घनी उदास छाया घिरी हुई थी। क्या वह मौत की सी मौन-विषाद-भरी छाया सीधे लोट की अन्तरात्मा से जाकर टकरायी थी? कारण जो भी हो, लोट ने जब मृत्यु के पार के जीवन की चर्चा चलायी तब गेटे ने अपने अन्तर में मार्मिक रूप से तीखी टीस का अनुभव किया।

दूसरे दिन सुबह गेटे किसी को कोई सूचना दिये बिना वेत्सलर से भागकर चला गया। लोट और केस्टनर दोनों को उसके इस विचित्र व्यवहार से बड़ी पीड़ा पहुँची। यह आश्चर्य की ही बात है कि केस्टनर को गेटे के इस तरह चले जाने पर लोट से अधिक ही दुःख हुआ, कम नहीं, जब कि उसकी स्थिति में कोई साधारण व्यक्ति होता तो वह अपने प्रेम-प्रतिद्वन्द्वी के चले जाने पर प्रसन्न ही होता। गेटे ने एक नौकर के हाथ केस्टनर की कुछ पुस्तकों को वापस करते हुए दो छोटे-छोटे पत्र भी साथ में भेजे। लोट को जब निश्चित रूप से यह पता लग गया कि गेटे वेत्सलर छोड़कर चला गया है तब केस्टनर के सामने ही उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े। उसने एक लंबी साँस ली। वह साँस निश्चय ही आराम की रही होगी, पर उसके साथ एक कटीली वेदना निहित थी जो उसके प्राणों को हिलकोर रही थी।

सब से अधिक दुःखी थे लोट के घर के बच्चे। सब के मुँह से विस्मय-भरी उदासी के साथ यह आवाज प्रायः एक साथ निकल पड़ी :

"डा० गेटे चले गये !" सभी बच्चों के अन्तर में स्पष्ट ही एक अजीब सा सूनापन छा गया था। सभी के भीतर संभवतः रह-रह कर यह प्रश्न उठ रहा था कि अब कौन उनकी शरारतों को प्रेम से सहन करता हुआ परी-लोक की और अनजान देशों की कहानियां सुनावेगा ? एक बच्चे ने साहस करके लोट से पूछा : "जीजी, क्या अब डा० गेटे लौट कर नहीं आवेंगे ?" पता नहीं, उसकी अन्तरात्मा में यह आशंका कैसे घर कर गयी थी। लोट ने प्यार से उसका मुँह चूमते हुए और स्नेह से उसकी ठुड्डी को हाथ से पकड़ते हुए कहा : "क्यों नहीं आयेंगे, भैया, जरूर आयेंगे।" पर उसका अन्तर्मन जानता था कि अब गेटे का लौटना असंभव है।

गेटे ने केस्टनर को विदाई का जो पत्र लिखकर भेजा था उसका आशय इस प्रकार था :

" वह गया, केस्टनर ! जब तक यह पत्र तुम्हारे हाथ पहुँचेगा तब तक 'वह' इस स्थान को छोड़ चुकेगा। दूसरा पत्र लोटचन* को दे देना। कल जो बातें हम लोगों के बीच हुई उनसे मेरे भीतर सब-कुछ बिखर गया है। अभी मैं कुछ अधिक कहने की मानसिक स्थिति में नहीं हूँ और केवल विदा चाहता हूँ। यदि मैं तुम लोगों के साथ एक क्षण भी अधिक रहता तो अपने को जब्त न कर पाता। अब मैं अकेला हूँ, और...जा रहा हूँ।"

लोट को उसने लिखा था :

"मुझे निश्चय ही आशा है कि मैं फिर कभी तुमसे आकर मिलूँगा, पर ईश्वर ही बता सकता है कि कब। लोट, क्या तुम कल्पना कर सकती हो

---

* चार्लोट या लोट का प्यार का नाम।

कि जब तुम बोल रही थीं और मैं जानता था कि मैं तुमसे अन्तिम बार मिल रहा हूँ, तब मेरे भीतर क्या बीत रही थी ? वह कौन सी प्रेरणा थी जिससे अनजाने प्रेरित होकर तुमने मृत्यु के पार के जीवन की चर्चा चलायी ? जो भी हो, अब मैं अकेला हूँ और एकांत में रो भी सकता हूँ। तुम खुश रहो मैं आशा करता हूँ कि तुम्हारे हृदय में मेरे लिये कहीं न कहीं स्थान रहेगा ही। बच्चों को मेरी तरफ से प्यार करना और बता देना कि 'वह' अब चला गया, इससे अधिक इस समय मैं और कुछ नहीं कह सकता।"

गेटे जब वेत्सलर से लौट कर अपने घर (फ्रांकफुर्ट) पहुँचा तब उसे अपने भीतर-बाहर का सारा वातावरण एक अजीब-सी उदासी से भरा मालूम देने लगा। उसने अपने सोने के कमरे में लोट का चित्र टाँग दिया और उसे देख-देखकर वह अपने मन में उस तीखी रोमांटिक वेदना को जगाये रखता था जिसे वेत्सलर से वह अपने साथ लाया था। उसकी तात्कालिक मनःस्थिति का अध्ययन और उसकी वेदना का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर यह तथ्य सुस्पष्ट रूप से सामने आने लगता है कि उसकी विकलता इसलिये नहीं थी कि वह लोट को अपने परिपूर्ण अन्तर से प्यार करता था, बल्कि इसलिये थी कि वह लोट को अपने व्यक्तित्व की मोहकता से इस कदर प्रभवित कर सकने में असफल रहा कि वह बिना किसी प्रतिरोध के उसको पूर्णतः आत्म- समर्पण कर देती। वस्तुतः उसके अहम् को चोट पहुँची थी, उसके हृदय की कोमल भावनाओं को नहीं। गेटे जानता था कि उसे कोई भी सुन्दरी लड़की किसी भी क्षण मिल सकती है और उसकी खातिर अपना सब-कुछ त्याग करके प्रसन्न हो सकती है। उसके पहले भी वह कई सुन्दरी लड़कियों से प्रेम-संबंध स्थापित कर चुका था और अन्त में उन्हें त्यागकर भाग चुका था। उसके बाद भी उसने कई सुन्दरियों से उसी प्रकार का संबंध जोड़ा था। पर लोट के संसर्ग में आने से नारी के जिस सुदृढ़ नैतिक और चारित्रिक रूप का

अनुभव उसे हुआ वह अपूर्व था। वहाँ उसके अहम् को बुरी तरह पराजित होना पड़ा था, और इस तरह की पराजय का आदी वह कभी नहीं रहा। उसकी तत्कालीन उत्कट मानसिक वेदना का रहस्य यहीं पर था। वास्तव में उसकी वह पीड़ा इस सीमा को पहुँच गयी थी कि वह आत्म-हत्या की बात सोचने लगा। उसने एक बहुत ही सुन्दर कलात्मक और कीमती खंजर अपने सिरहाने---तकिये के नीचे---रख छोड़ा था और प्रति-दिन आधी रात में उसे निकाल कर वह अपने कलेजे में भोंकने की बात सोचता था। अपनी आत्मकथा में उसने यह स्वीकार किया है। पर ऐसा उसने किया नहीं।

वह केस्टनर को अक्सर पत्र लिखता रहता था जिनमें लोट के प्रति मान अभिमान भरे, भावकतापूर्ण संकेत भी रहते थे। उसने लिखा कि जिस दिन उन दोनों (केस्टनर और लोट) का विवाह हो जायगा उस दिन वह लोट का चित्र अपने कमरे से उतार कर कहीं गाड़ देगा। पर विवाह हो जाने की सूचना मिलने पर भी वह चित्र को न उतार सका। फिर भी वह केस्टनर को पत्र लिखता चला गया। एक पत्र में उसने केस्टनर को सूचित किया कि वह एक दूसरी लड़की को प्यार करने लगा है और लिखा कि वह लोट को इस बात की सूचना दे दे। उसे यह भी बता दे कि वह लड़की रूप में और गुणों में उसी के समक्ष है। स्पष्ट ही उसके मन में अपने अपमानित और आहत अहम् का बदला लेने की भावना जोर पकड़ने लगी थी। केवल शिष्टता के खयाल से उसने यह नहीं लिखा कि जिस दूसरी लड़की को वह प्यार करने लगा है वह लोट से भी कई बातों में विशिष्ट है। अन्यथा उसकी आंतरिक इच्छा यही कहने को थी। वैसे सचाई यह थी कि जिस नयी लड़की से उसने तात्कालिक संबंध स्थापित कर लिया था उसमें लोट की शतांश योग्यता भी नहीं थी।

इस तरह के पत्र कैस्टनर को लिखकर और लोट के मन को चोट पहुँचाने के उद्देश्य से काव्यात्मक शैली में विविध प्रकार के व्यंगात्मक संकेत करके भी गेटे के मन को तसल्ली नहीं हुई। उसने एक ऐसा उपन्यास लिखने की योजना बनायी जिसमें स्वयं वह नायक हो, लोट नायिका और केस्टनर को एक प्रकार के निष्प्रभ उपनायक के रूप में अवतरित किया जाय।

और एक दिन उसने अपनी इस योजना को कार्यरूप में परिणत कर दिया। 'वेटेंर की करुण कथा' नाम से उसने एक उपन्यास लिखा। उसके तरुण नायक वेटेंर के भीतर उसने स्वयं अपनी आत्मा को प्रविष्ट कराया और उसकी नायिका तो लोट थी ही। लोट का नाम तक उसने उपन्यास में ज्यों का त्यों रहने दिया। लोट के पति का नाम केस्टनर की जगह पर उसने रखा आलबर्ट। लोट वेटेंर को अन्तर से चाहती है, पर आलबर्ट से सामाजिक बंधन में बँधे होने के कारण अपने प्रेम की निष्फलता के बोध से अन्तर में एक मार्मिक किन्तु नीरव हाहाकार का अनुभव करती है। वेटेंर का प्रेम के तीखे काँटे में बिंधा हृदय कोई उपचार न देखकर जीवन को ही निरर्थक मानने लगता है और आत्महत्या के पक्ष में कई रोमांटिक तर्कों का जाल बुनने बैठ जाता है। वेटेंर (नायक) को गेटे ने प्रचंड प्रतिभाशाली और दार्शनिक-स्वभाव कवि के रूप में चित्रित किया, जो अपनी उद्दाम रोमानी प्रवृत्तियों के तूफानी वेग को संसार के आगे एक तोहफे के रूप में छोड़ जाना चाहता है। प्रेम को ही वह जीवन का अर्थ और इति मानता है और असफल प्रेम से मृत्यु को श्रेयस्कर समझता है। और अन्त में एक पिस्तौल से अपनी जीवन-लीला समाप्त कर डालता है। उपन्यास में वेटेंर को एक महान प्रेमिक और लोट को आदर्श प्रेमिका के रूप में दिखाया गया है और लोट के पति (आलबर्ट) को एक अत्यन्त साधारण बुद्धिवाले, तुच्छ और उपेक्षणीय

व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। एक ऐसे मीठे दर्द से भरी भावुकता सारे उपन्यास में कूट-कूटकर भर दी गयी थी जो अठारहवीं शती के विद्रोही तरुण प्राणों पर गहरा प्रभाव छोड़े बिना नहीं रह सकती थी।

एक महीने के परिश्रम से गेटे ने वह उपन्यास पूरा कर डाला और जल्दी ही वह छप भी गया। छपते ही उसने सारे यूरोपीय साहित्य-समाज में ऐसा तहलका मचा दिया कि लगता था कि सारा युग ही किसी गहरे भूकंपी धक्के से डोल उठा। उसे पढ़कर प्रत्येक पाठक या पाठिका को ऐसा बोध होने लगा कि गेटे ने उसी के दर्द को समझकर वह उपन्यास लिखा है। प्रायः सभी यूरोपीय भाषाओं में उसके अनुवाद धड़ल्ले से छपने लगे, और, न जाने कैसे, चीनी भाषा में भी वेर्टेर और लोट की करुण प्रेम-कहानी का प्रचार बड़ी जल्दी हो गया। यहाँ तक कि काम किये हुए चीनी बर्तनों में भी वेर्टेर और लोट की कल्पित मूर्तियाँ अङ्कित पायी गयीं।

अपनी अप्रत्याशित सफलता से तिरस्कृत प्रेमिक गेटे की अभिमान-भरी छाती उच्छ्वास से फूल उठी। उसने 'वेर्टेर' की एक कापी लोट और एक कापी उसके पति केस्टनर के नाम उपहार के रूप में भेज दी।

लोट ने जब उसे पढ़ा तब गेटे की प्रतिभा पर वह मुग्ध तो हुई, फिर भी उसे लगा कि गेटे ने उन दोनों पति-पत्नि (केस्टनर और लोट) के साथ बहुत अन्याय किया है। केस्टनर को भी लगा कि गेटे ने उसकी सच्ची मित्रता और उदार भावना का अनुचित लाभ उठाकर उसके साथ दगाबाजी की है। केस्टनर को तनिक भी आपत्ति न होती यदि गेटे ईमानदारी से लोट के साथ अपने प्रेम संबंध का सच्चा रूप अङ्कित करता। पर उसने तो केवल उसके स्थूल ढाँचे को लिया और उस ढाँचे के भीतर उन तीनों के पारस्परिक सम्बन्ध का जो मनमाना चित्र आँका वह केस्टनर

को अपने लिये अत्यन्त अपमानकर लगा। 'वेर्टेर' के आलबर्ट में और केस्टनर में बाहरी परिस्थितियों की दृष्टि से साम्य अवश्य था, पर उन दोनों के व्यक्तित्व में, स्वभाव में, रुचि में और दृष्टिकोणों में ज़मीन-आसमान का अन्तर था। सचमुच की लोट का पति केस्टनर सुसंस्कृत और परिमार्जित रुचि वाला, उदार-स्वभाव, जीवन की सूक्ष्मताओं और गहराइयों को समझने की अन्तर्दृष्टि रखनेवाला और अपने प्रतिद्वन्द्वी के रूप में आये हुए तरुण कवि के प्रति ईर्षा के स्थान पर आंतरिक सहानुभूति रखनेवाला उच्चाशय व्यक्ति था, जबकि 'वेर्टेर' की कल्पित लोट का पति आलबर्ट अपेक्षाकृत मूर्ख, असंस्कृत, अपनी पत्नी के अयोग्य, अत्यन्त साधारण कोटि का व्यक्ति दिखाया गया था।

केस्टनर ने 'वेर्टेर' पढ़ने के बाद अत्यन्त दुखी होकर एक पत्र गेटे को लिखा, जिसमें उसने स्पष्ट शब्दों में, समुचित विश्लेषण के साथ यह जता दिया कि गेटे ने जानबूझकर उन लोगों को अपमानित करने और स्वयं अपने को महान् सिद्ध करने के उद्देश्य से आलबर्ट का वैसा दयनीय और हास्यास्पद रूप दिखाया है। साथ ही उसने लोट के चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में भी आपत्ति प्रकट की। गेटे ने अपने उपन्यास में दिखाया था कि लोट वेर्टेर के प्रेम में पागल होकर उस पर मर मिटती है और 'प्रतिभाशाली' वेर्टेर के 'तेजस्वी' व्यक्तित्व की तुलना में अपने पति आलबर्ट का निर्जीव और आकर्षणहीन व्यक्तित्व देखकर उसके प्रति उसके मन में अवज्ञा, विरक्ति— बल्कि घृणा— की भावना दिन पर दिन बढ़ती चली जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सचमुच की लोट और उपन्यास की कल्पित लोट के स्वभाव, रुचि और प्रवृत्तियों में मूलगत अन्तर है— केवल दोनों की बाहरी परिस्थितियों में साम्य है। लोट को भी, स्वभावतः, केस्टनर की ही तरह अपने उस विकृत चरित्र-चित्रण से

मार्मिक चोट पहुँची। केस्टनर ने लोट के मन की उस प्रतिक्रिया की सूचना भी गेटे को दे दी।

गेटे को जब केस्टनर का वह पत्र मिला तो वह मन ही मन कट गया। क्योंकि यह तो वह अस्वीकृत नहीं कर सकता था कि उपन्यास की सारी प्रेरणा उसे लोट के प्रति अपने असफल प्रेम और केस्टनर, लोट और उसके छोटे-छोटे भाई-बहनों के सम्मिलित पारिवारिक वातावरण से ही प्राप्त हुई थी। उपन्यास की सारी पृष्ठिभूमि उसी वातावरण से संबंधित थी। उसने केस्टनर को अत्यन्त विनम्रतापूर्ण शब्दों में लिखा कि उसका इरादा उन लोगों का हृदय दुखाने का कतई नहीं था, और यदि औपन्यासिक वातावरण तैयार करने और कथा को अधिक तीव्रता से मार्मिक और प्रभावोत्पादक बनाने के उद्देश्य से मूल चरित्रों के चित्रण में रङ्ग कहीं अधिक गहरा और कहीं अधिक हलका हो गया हो तो उसके लिये वे लोग उसे क्षमा कर दें।

और केस्टनर ने सचमुच उसे क्षमा कर दिया, क्योंकि वह प्रारंभ ही से गेटे की प्रतिभा पर सच्चे हृदय से मुग्ध था! उसके चरित्र की इस महनीयता से परिचित होते हुए भी गेटे ने उसकी अवज्ञा की, यह उसकी प्रचंड प्रतिभा की निराली खामखयाली का दोष था, न कि उसकी समझ का।

इधर 'वेर्टेर' की लोकप्रियता बढ़ती चली जाती थी और उसके कारण यूरोपीय साहित्य-जगत में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक एक अजीब-सी उथल-पुथल, एक अपूर्व—साहित्यिक क्रांति की लहर फैल गयी थी। कई निराश तरुण प्रेमिकों ने उसे पढ़कर वेर्टेर की ही तरह आत्महत्या के पथ को अपनाया। आत्महत्या करनेवालों में से कइयों के पास 'वेर्टेर' की प्रति पायी गयी। प्लेग की तरह घातक और प्रसरणशील

छूत के रोग के समान 'वेर्टेर' ने यूरोपीय देशों में जो घातक रोमांटिक रोग, प्रकाशन के कुछ ही समय के अन्दर, चारों ओर फैला दिया उसका नाम ही 'वेर्टेर-फीवर' (वेर्टेर द्वारा अनुप्राणित ज्वर) या 'वेलत्श-मत्र्स' (मर्ज) अर्थात् 'जगत्-व्याधि' पड़ गया। नेपोलियन जब कई वर्ष बाद गेटे से मिला था, तब उसने स्वीकार किया था कि वह 'वेर्टेर' से बहुत अधिक प्रभावित हुआ था और उसने सात बार उस युग की व्यापक किंतु सुप्त वेदना को उभाड़नेवाले विचित्र उपन्यास को पढ़ा था।

बिजली की सी तेजी से फैलनेवाली 'वेर्टेर' की उस अप्रत्याशित ख्याति से तिरस्कृत प्रेमी गेटे की मान भरी छाती और अधिक फूल उठी। केस्टनर और लोट को 'वेर्टेर' के प्रकाशन से जो चोट पहुँची थी उसके उत्तर में गेटे ने लिखा कि यूरोप के हजारों लाखों पाठकों द्वारा जिस सहानुभूति और समवेदना से लोट का नाम लिया जा रहा है क्या वह उसके उन दो मित्रों की नाराजगी की क्षतिपूर्ति कर सकने के लिये पर्याप्त नहीं है !

वास्तव में गेटे ने 'वेर्टेर' की रचना द्वारा लोट को अमर कर दिया था—भले ही उसमें गेटे के आहत अहम् की प्रतिक्रिया कुछ बदला लेने की-सी भावना के रूप में अभिव्यक्त हुई हो। लोट की प्रारम्भिक नाराजगी धीरे-धीरे कम होती चली जाती थी और वह 'वेर्टेर' को एक बदले हुए दृष्टिकोण से समझने लगी थी। वह मन ही मन यह बात स्वीकार करने लगी थी कि गेटे ने व्यक्तिगत रूप से भले ही उसे कुछ चोट पहुंचायी हो, पर साहित्यिक रूप से उसने सचमुच उसकी स्मृति को स्थायित्व प्रदान कर दिया था।

उसके बाद अपने दीर्घ जीवन-काल में गेटे लोट से केवल एक बार कुछ ही समय के लिये मिला था। तब लोट साठ साल की वृद्धा विधवा के रूप में उसके सामने आयी थी। जीवन के गहरे अनुभवों और दीर्घ

साधना से संयत तथा गहन ज्ञान के प्रकाश से प्रदीप्त महाकवि का तपः-सिद्ध व्यक्तित्व देखकर लोट ने मन-ही-मन आंतरिक श्रद्धा से उसे प्रणाम किया। प्रायः पैंतालिस वर्ष पूर्व तरुण कवि ने जिन अलौकिक स्वप्नों की रंगीनी से भरी आँखों से उसे देखा था वे आज व्यक्ति-जगत् के परे सृष्टि के मूल रहस्य के केन्द्र में ध्यानमग्न सी लगती थीं। लोट के मन में दीर्घ अवधि के बाद उसे देखकर प्रथम मिलन की स्मृतियों की न जाने कौन सी भूली हुई मीठी वेदनाएँ जगी होंगी!

पैंतालिस वर्षों के बाद के क्षणिक मिलन के बाद लोट फिर स्वप्न की तरह गेटे के जीवन-पट से अंतर्हित हो गयी। जिस नारी ने कवि के भीतर एक दिन वह गहरी वेदना जगायी थी जिससे सारा युग प्लावित हो गया था, परवर्ती दीर्घ जीवन के विकास में उसका कोई अस्तित्व ही उसके (कवि के) लिये नहीं रहा। अनंत-काल के केवल एक स्वप्न-बिंदुवत् क्षण के लिये वह उससे मिली, जो न मिलने के ही बराबर था। यह है जीवन और उसकी रहस्यमयी चिर-प्रवाहशीलता, जिसे पीछे लौटकर देखने का अवकाश नहीं है!

एक जापानी वेश्या का अपूर्व आत्मत्यागमय पवित्र प्रेम

उसका नाम किमको था। क्योटो के एक वेश्यालय में वह रहती थी। उसके रूप और गुण की ख्याति तमाम शहर में फैली हुई थी। वह इतनी प्रसिद्ध हो चुकी थी कि कुछ व्यापारियों ने उसकी मालकिन की आज्ञा से उसका फोटो लेबिल के तौर पर अपनी चीजों में चिपकाना शुरू कर दिया, जिससे उनकी बिक्री बढ़ गई। बड़े बड़े सेठ साहूकार और रईस उससे बातें करके अपने को धन्य समझते थे। एक राजकुमार ने उसे बहुमूल्य हीरे का एक हार दिया, जिसे किमको ने कभी नहीं पहना और बक्स में यों ही पड़ा रहने दिया। वह वेश्या थी, और वेश्याओं की कलाओं से भलीभांति परिचित थी, तथापि उसने कभी उस कला के दुरुपयोग से किसी को फँसा कर बरबाद करने की चेष्टा नहीं की। शील-स्वभाव, और बात-व्यवहार में वह उच्च कुलों की लड़कियों से भी कई गुना अधिक सुसंस्कृत थी। पर सबसे अधिक आकर्षण था उसके निष्कपट हृदय का स्नेह-परायण माधुर्य।

असल में उसका जन्म कुलीन वंश में ही हुआ था। उसका पितृदत्त नाम 'अइ' था जिसके दो अर्थ हो सकते हैं: प्रेम अथवा दुख। तब कौन जानता था कि उसका जीवन प्रेम और दुख में ही बीतेगा! उसके पिता किसी सरकारी विभाग के एक उच्च पद पर नियुक्त थे। उसके पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी थी, पर बाद में दुर्भाग्यवश किसी कारण से उनकी हालत बहुत खराब हो गई और वे निर्धन बन गये। इसी दुख से उनकी

मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बाद किमको की माता कुछ दिनों तक किसी तरह कुटुम्ब का खर्चा चलाती रही। और अपनी दो लड़कियों को उसने स्कूल भी पढ़ने को भेजा। पर कब तक इस प्रकार काम चलता! अन्त को यहां तक नौबत आई कि अइ के दादा की कब्र खोद कर उनकी लाश के साथ रक्खी हुई सोने की मूठ वाली तलवार निकालनी पड़ी। कुछ समय तक उसे बेच कर काम चला, पर फिर वही स्थिति आ गई। उससे अपनी माता और छोटी बहन को भीख मांगते न देखा गया। दो दिन तक वह अपने कमरे के किवाड़ बन्द करके अपने कुटुम्ब की इस दुर्गति पर रोती रही। तीसरे दिन अचानक उसे जाने क्या सूझी, वह सीधे एक वेश्यालय-संचालिका के पास गई और उससे प्रार्थना की कि वह उसे उतने दामों में खरीद ले जितने में उसके मां तथा प्यारी बहन का गुजारा अच्छी तरह हो सके। लड़की का रूप तथा गुण और तेज देखकर वेश्यालय-संचालिका बहुत खुश हुई और उसके द्वारा अच्छा लाभ होने की संभावना देखकर उसने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

तब से किमको संभ्रांत 'वेश्या' का जीवन व्यतीत करने लगी। क्योटो भर में उसकी ऐसी सुन्दरी रमणी दूसरी न थी। सैकड़ों प्रतिष्ठित व्यक्ति उस पर मर मिटने को तैयार थे। पर वह अपने स्निग्ध गांभीर्य से सबको शान्त करके किसी को आवश्यकता से अधिक प्रोत्साहन नहीं देती थी। उसके पूजक उसके लिये अनेक अमूल्य उपहार भेजा करते थे, पर वह किसी उपहार को अपने काम में नहीं लाती थी। पर अपनी इस उदासीनता को वह ऐसे अच्छे ढंग से प्रकाश करती थी कि किसी को चोट नहीं पहुँचती थी। घर घर में, पत्रों में, पोस्टरों में, शराब की बोतलों और चाय के टिनों के लेबिलों में सर्वत्र उसी की चर्चा, उसी की धूम और उसी का विज्ञापन दृष्टिगोचर होता था, तथापि किमको का हृदय इन बातों से बिलकुल भी विचलित नहीं हो पाता था। दुनिया

जानती थी कि वह 'वेश्या रानी' बन कर स्वर्ग सुख भोग रही है। पर उसका हृदय भीतर ही भीतर निष्ठुर नियति के निर्मम निर्यातन से किस प्रकार दग्ध हो रहा था, इसकी खबर किसी को नहीं थी।

अकस्मात् एक दिन यह समाचार वन-आग की तरह शहर भर में फैल गया कि किमको एक आदमी के साथ भाग कर चली गई है। उसके असंख्य पुजारियों के हताश हृदयों में अंधकार सा छा गया और उसकी मालकिन माथा ठोक कर रह गई।

बात यह थी कि कुछ समय से किमको के पास एक ऐसा नवयुवक आया करता था जो अपने धनी बाप का इकलौता बेटा होने पर भी बड़ा समझदार, सुसभ्य और सहृदय था। किमको का चिरदग्ध, चिर-शुष्क हृदय वास्तविक प्रेम के लिये बहुत दिनों से तरस रहा था। पर वेश्यागामी नवयुवकों के लालसा-जनित प्रेम के क्षणिक मोह से उसके उन्नत भावप्रवण हृदय की अतृप्त पिपासा कभी बुझ नहीं सकती थी। किन्तु इस बार जब उसने वास्तव में एक सहृदय पुरुष के सच्चे प्रेम की श्रद्धा पाई तो वह रह न सकी। वह युवक उससे विवाह करके उसे उच्च समाज में फिर से प्रतिष्ठित करना चाहता था।

भागने के पहले किमको अपनी प्यारी बहन का विवाह एक सुयोग्य व्यक्ति के साथ कर गई। किमको की मां पहले ही मर चुकी थी। बहन के लिये पति का ऐसा अच्छा चुनाव उसने किया कि वह जीवन भर उसके साथ सुखपूर्वक रही।

इसके बाद वह सदा के लिये वेश्यालय छोड़ कर चली गई। उसके प्रेमिक का मकान क्या था राजमहल था। वहां वह अपने पिछले कठोर-दुखःमय, कलंकित जीवन की सब बातें भूल कर सचमुच रानी की तरह अपने प्रियतम के साथ आनन्द पूर्वक रह सकती थी। अपने

प्रेमिक को वह सम्पूर्ण हृदय से, समस्त आत्मा से चाहती थी और वह भी उसे उतना ही चाहता था। उसके लिये वह बड़ा से बड़ा बलिदान करने को तैयार था। पर विवाह की बात छिड़ते ही किमको उसे टाल देती थी। उसके इस रहस्यमय आचरण का अर्थ उसके प्रेमिक की समझ में नहीं आता था। एक दिन उसने काँपती आवाज में, व्याकुल वेदना के साथ अपने विचार अपने प्रेमिक के आगे प्रकट कर ही दिये। उसने कहा: "आप जानते हैं, अपनी दुःखिनी माता और प्यारी बहन का कष्ट न देख सकने के कारण ही उनके भरण-पोषण के लिये मैंने पाप-वृत्ति स्वीकार की और घोर नरक के तप्त अग्निकुंड में वास किया। वह जीवन विगत होने पर भी उसकी जलन अभी तक मेरे हृदय में वर्तमान है और संसार की कोई भी शक्ति उसे मिटा नहीं सकती। इसलिये अपने हृदय का जीता जागता कलंक लेकर मैं आपके चिर-पवित्र जीवन को भी कलुषित बनाना नहीं चाहती। मेरी बात पर विश्वास कीजिये कि गहन दुखों की अनुभूतियों से मैं जो बात कह रही हूँ वह आपके लिये अन्त में हितकारी सिद्ध होगी। आपकी स्त्री बन कर मैं आपको संसार के सामने लांछित नहीं होने दूंगी। मेरे हृदय पर आप सदा विराज करते रहेंगे, मैं चिर-जीवन आपकी याद में रोया करूँगी। यह रोना ही मेरे जीवन का एकमात्र सहारा बन कर रहेगा। आप अपने कुल के योग्य किसी सुन्दरी सुशीला लड़की से विवाह करके सुखपूर्वक रहें मैं यही चाहती हूँ।"

उसी दिन किमको सदाके लिये अपने प्रियतम पुरुष को छोड़ कर चली गई। अपने गहने, कपड़े आदि चीजें सब वहीं छोड़ गई। अपने साथ कुछ भी नहीं ले गई। चारों ओर उसे ढूंढा गया। तारों और चिट्ठियों से उसके सम्बन्ध में पूछ-ताछ की गई, बड़ा हल्ला मचाया गया, पर कोई फल नहीं हुआ।

कुछ समय बाद उसके प्रेमिक ने उसकी प्रतीक्षा करते करते अन्त में हताश होकर अपना विवाह किसी दूसरी स्त्री से कर लिया। और उस स्त्री से एक लड़का भी उत्पन्न हुआ। पति-पत्नी सुन्दर लड़के को लेकर सुखपूर्वक अपने दिन बिताने लगे—किमको मानों स्वप्न की एक छाया थी। कुछ वर्ष बाद उसी मकान के आँगन में एक दिन एक भिक्षुणी भीख माँगने के लिये आई। बालक ने जब भिखारणी की पुकार सुनी तो बाहर दौड़ा आया। भिक्षुणी ने बालक को गोद में लेकर उसका मुँह चूम कर उसके कान में कुछ बात कही। घर की नौकरानी जब भीख देने के लिये दो मुट्ठी चावल लाई तो लड़के को संन्यासिनी की गोद में देख कर उसे आश्चर्य हुआ। नौकरानी जब चावल देने लगी तो भिक्षुणी ने स्नेह-मधुर मुस्कान से कहा : "कृपा करके लड़के के हाथ में दीजिये। मैं उसी से भीख लूंगी।" लड़के ने उसकी झोली में चावल डाले। उसने उसे प्यार से चुमकार कर फिर एक बार उसका चुंबन लिया और पूछा : "अच्छा, फिर कहो तो तुम अपने पिता से क्या कहोगे ? मैंने तुमसे क्या कहने को कहा है ?" लड़के ने भिक्षुणी का सिखलाया हुआ यह वाक्य दुहराया : "पिता जी, एक स्त्री ने जिसे तुम कभी इस जन्म में नहीं देखोगे, कहा है कि आपका लड़का मैंने देख लिया है और इससे मुझे बड़ी भारी खुशी हुई है।"

भिक्षुणी मन्द मन्द मुसकराई। पर यदि बालक की आभ्यन्तरिक आँखें होतीं तो वह देखता कि उस हँसी में कैसी मर्मच्छेदी व्याकुलता छिपी हुई थी। एक बार लड़के को फिर से छाती से लगा कर संन्यासिनी चली गई। लड़के ने ठीक ठीक दुहरा कर उसकी बात अपने पिता से कही। उसका पिता पहले चौंका, फिर बेजार रोने लगा। वह समझ गया कि संन्यासिनी और कोई नहीं उसी की प्यारी किमको थी।

तब से पता नहीं चला कि वह चिरदुःखिनी, चिरलांछिता तापसी नारी विस्मृति-लोक के किस गहन अंधकाराच्छन्न अतल में, किस रहस्यमय अरण्य के किस विजन पर्वत की काली गुफा में छिपकर इस लोक के नश्वर शरीरधारी प्रियतम को अनन्तकालीन प्रियतम के रूप में भजती हुई प्रेम की अज्ञात पुजारिणी का जीवन बिताने लगी। रात रात भर अलख जगा कर वह "बुद्धं शरणं गच्छामि" के मंत्र से पाषाणी अहल्या की तरह प्रार्थना करती होगी कि उसके पूर्व-कलुषित जीवन का उद्धार हो जाय और अपने प्रियतम की पुण्य स्मृति अपने साथ लेती हुई बुद्ध के चरणों में वह सदा के लिये विलीन हो जाय।

भरत और राम के अलौकिक प्रेम का मनोवैज्ञानिक आलोचन

तुलसीदास ने भरत और राम के जिस अपूर्व भावोद्वेगपूर्ण प्रेम का वर्णन किया है वह संसार साहित्य में अद्वितीय और अनुपम है। केवल उसी कवि के मानसलोक में इस दिव्य प्रेम की आलौकिक कल्पना का उद्बोधन सम्भव है जिसकी आत्मा प्रेम-रस में परिपूर्ण रूप से डूब चुकी हो।

भरत और राम का प्रेम एक ही रक्त से उत्पन्न भाई भाई का साधारण स्नेह नहीं है। प्रेमक प्रेमिका के स्वर्गीय प्रेम का जो पवित्रतम तथा उन्नततम स्वरूप है वही इन दो भाइयों के भाव विह्वल प्रेम के पारस्परिक आकर्षण में पाया जाता है। भरत को तुलसीदास ने सर्वश्रेष्ठ भक्त कहा है। पर उनकी भक्ति में निरी दास मनोवृत्ति नहीं है। उसमें आत्मा की मुक्ति चाहने वाले अथवा परलोक में कल्याण की कामना करने वाले भक्त की परमार्थ भावना भी नहीं है। उसमें केवल प्रेम के ही लिये प्रेमिक को चाहने वाले, भावप्रावण, निष्काम आत्मत्यागी के प्रेम की व्याकुल रस-पिपासा की पुलक लालसा पाई जाती है। भरत की इस निगूढ़ प्रेमानुभूति का प्रथम परिचय हमें तब मिलता है जब जनकपुरी से राम के धनुष तोड़ने की सूचना तथा विवाह की तैयारी का संदेश लेकर एक दूत दशरथ के पास आता है:

खेलत रहे तहां सुधि पाई, आये भरत सहित दोउ भाई।
पूछत अति सनेह सकुचाई, तात कहां ते पाती आई ?

कुशल प्रानप्रिय बन्धु दोउ, अहहिं कहहु केहि देश ?
सुनि सनेह साने वचन, बांची बहुरि नरेश ।

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता, अधिक सनेह समात न गाता ।
प्रीति पुनीति भरत की देखी, सकल सभा सुधि लहेउ विशेखी ।

इसके बाद अयोध्या कांड में परिपूर्णरूप से यह महत्वपूर्ण प्रेम व्यक्त हुआ है ।

सच्चा प्रेम जहाँ होता है वहां प्रेमियों के मन में आत्मत्याग की भावना प्रबल होती है । वे इस बात के लिये अवसर ढूढ़ते रहते हैं कि कब और कैसे अपने प्रेम-पात्र की खातिर महत् त्याग प्रदर्शित करने का सौभाग्य प्राप्त करें । और त्याग जितना ही बड़ा होता है उन्हें उतना ही अधिक आनन्द मिलता है । राम ने जब वनवास का प्रस्ताव स्वीकार किया तो इस हर्ष का कारण कर्त्तव्य-पालन किसी अंश तक अवश्य था, पर सबसे बड़ा कारण यह भावना थी कि उनके इस महान त्याग के आकर्षण से भरत का प्रेम-सागर पूर्णिमा के सागर की भांति प्रबल वेग से हिल्लोलित हो उठेगा :

भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू । विधि सब विधि मोहि सम्मुख आजू ।

राम यह बात भली भांति जानते थे कि भरत राज के भूखे नहीं है और उनके वनवास से वह कभी राजसुख भोगने की इच्छा नहीं रख सकते । तथापि इसी कारण से उनकी वन-गमन की इच्छा और भी प्रबल हो उठी । प्रेम-रस का वास्तविक आनन्द दुख-सागर के आलोड़ित होने से ही प्राप्त हो सकता है । राम से यह बात छिपी नहीं थी ।

अयोध्या वापस आने पर जब भरत को राम वनवास के निदारुण संवाद की सूचना मिली और यह भी मालूम हुआ कि इस अनर्थ के मूल कारण वे ही हैं तो उनके मर्म से एक सुदीर्घ निश्वास निकल कर रह

गया। उनके अभ्यन्तर की अन्तस्तल भेदी वेदना की वास्तविकता को समझने वाला व्यक्ति कोई नहीं था। किससे क्या कहते? माता से प्रथम आवेश में कुछ कड़े शब्द कहने लगे थे, पर अन्त में यही कह कर रह गये कि:

राम विरोधी हृदय ते प्रगट कीन्ह विधि मोहि।
मो समान को पातकी बादि कहहुं कछु तोहि।

कौशल्या को देख कर भरत के हृदय का बाँध टूट पड़ा। वे उनके चरणों में लोट कर एक निपट अबोध की तरह व्याकुल हृदय से कहने लगे:

मात तात कह देहु दिखाई, कहँ सिय राम लखन दोउ भाई।

एक रोता हुआ बच्चा माता की गोद में जाने से अन्तःकरण की सहज प्रवृत्तिवश समझ जाता है कि उस सुखमय नीड़ में किसी भी कष्ट की कोई सम्भावना नहीं है। कौशल्या को पाकर भरत ने भी कुछ समय तक उसी नीड़ के स्नेह-सुखालस का मधुर अनुभव किया। कौशल्या को पाकर भरत के चित्त में प्रेम-पुलक का गद्गद् रस उच्छ्वसित होने का कारण यह भी था कि वह उनके प्रियतम (राम) की माता थी!

भरत के जले हुए हृदय पर सब से अधिक पीड़ा तब पहुँची जब गुरुजनों ने उन्हें राजकाज सँभालने के लिये विवश करना चाहा। राम के वन-गमन से सब के हृदय में शोक छाया हुआ था संदेह नहीं, पर अपने प्रियतम के बिछोह से भरत के हृदय में जो प्रलयंकर हाहाकार मच रहा था, जो निखिल को आच्छन्न करने वाले तूफानी बादलों की घटा छाई हुई थी उसे कोई समझ नहीं पाता था और न किसी को वह समझा सकते थे। उस घनघोर अन्धकार में बीच बीच में जब बिजली कौंध उठती थी तब उस क्षणिक प्रकाश में केवल एकमात्र रास्ता भरत को दिखाई देता था। वह यह कि वन जाकर राम से मिला जाय और उनसे कहा

जाय : "भैया, यह सब क्या हुआ है ? जिस बात की कभी स्वप्न, में भी कल्पना नहीं की थी वही नियति के कठोर चक्र से संभव हुई है। पर आप जैसे धीर, वीर और ज्ञानी महात्मा ने मुझसे यह आशा कैसे की कि इस चरम संकट की हालत में भी, जब कि सारे राज्य में आग लगी हो और मेरे हृदय में उससे सौगुना अधिक प्रचण्ड ज्वाला धधक रही हो, मैं राज-काज संभाल लूंगा ?"

भरत के शंकित मन में अवश्य ही किसी अंश तक यह भय वर्तमान था कि कहीं राम सचमुच उन्हें कपटी समझ कर घृणा न करने लगे हों। तुलसीदास ने भरत की उत्तेजित मानसिक स्थिति का जो स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है उससे उक्त आशंका की कल्पना सहज में की जा सकती है। तथापि उनके अन्तस्तल में साथ ही यह पूर्ण विश्वास भी वर्तमान था कि राम के उदार प्रेम का मुक्त द्वार उनके लिये कभी बन्द नहीं हो सकता, और इस समय वह भले ही उनसे घृणा कर भी रहे हो, तथापि उनसे मिलने पर वह पिछली बातें सब भूल जायेंगे।

जब भरत पुरवासियों समेत राम से मिलने चले तो रास्ते भर उनका रोम-रोम "राम ! राम !" पुकार रहा था। निषाद के सम्बन्ध में जब उन्हें मालूम हुआ कि वह राम का स्नेहभाजन रह चुका है तो वह मानों सोते हुए जाग पड़े :

राम सखा सुनि स्यन्दन त्यागा, चलेउ तुरत उमगत अनुरागा।

निषाद समझता था कि राम का सच्चा सखा एकमात्र वही है और भरत को उनका परमशत्रु समझ रहा था। पर दोही चार बातों से वह समझ गया कि हजार जन्म ले चुकने के बाद भी वह भरत के अतल-व्यापी प्रेम का पार नहीं पा सकता।

राम ने जिस जिस स्थान पर विश्राम किया और जहां जहाँ पर वे सोये उस स्थान पर जाकर भरत की आंखों से आंसुओं का बांध टूट पड़ा और उन्होंने उस स्थान को मिट्टी आँखों से लगाई। वर्तमान मनोवैज्ञानिक भाषा में इस वृत्ति को 'फेटिशिज्म' कहते हैं। जिन लोगों में यह वृत्ति प्रबल होती है वे अपने प्रेमियों से सम्बन्ध रखने वाली कोई भी चीज पाकर उसे प्रेमिक के स्पर्श से सजीव समझ कर पूजते हैं। साधारण प्रेमियों के प्रेम में भी यह मनोवृत्ति पाई जाती है और भरत के उन्नत प्रेम में भी हम वही पाते हैं। प्रेम के विभिन्न स्वरूपों के मूल भाव में कोई अन्तर नहीं है। प्रभेद है केवल विकास अथवा ह्रास की दिशाओं में।

प्रयागराज में गंगा-यमुना का सितासित नीर देखकर राम लक्ष्मण की याद आ जाने से भरत की व्यकुलता बहुत बढ़ जाती है :

देखत श्यामल धवल हिलोरे, पुलक शरीर भरत कर जोरे।

रास्ते भर भरत की प्रेमोत्तेजना उन्हें कभी व्याकुल, कभी शंकित, कभी पुलकित और कभी अपूर्व आनन्दोद्वेग से उल्लसित करती रही। ज्यों ज्यों राम का आश्रम निकट आता गया त्यों त्यों उनका उद्वेग बढ़ता चला गया। जब एकदम समीप आ गये तो उनकी घबराहट स्वभावतः बहुत बढ़ गई।

समझि मातु करतब सकुचाहीं, करत कुतरक कोटि मन माहीं।
राम लखन सिय सुनि मम नाऊँ, उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ।
जो परिहरहिं मलिन मन जानी, जो सनमानहिं सेवक मानी।
मोरे सरन राम की पनहीं, राम सुस्वामि दोष सब जनहीं।
अस मन गुनत चले मगु जाता, सकुचि सनेह सिथिल सब गाता।
फेरत मनहुँ मातु कृत खोरी, चलत भगति बल धीरज धोरी।
जब समुझहिं रघुनाथ स्वभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ।
भरत दशा तेहि अवसर कैसी, जल प्रवाह जलि अलि गति जैसी।

कोई भी सूक्ष्मदर्शी मनोवैज्ञानिक कलाकार भरत की संकोच तथा उमंगमय तात्कालिक मानसिक स्थिति का इससे अच्छा वर्णन नहीं कर सकता।

पार भरत का यह अनुपम प्रेम एकपक्षीय नहीं था। राम की दशा भी भरत के आगमन की सूचना पाकर वैसी ही बेचैन हो रही थी। पर उनकी बेचैनी यथार्थ पुरुष की सी थी—गम्भीर किन्तु मार्मिक। भीतर ही भीतर उनका मन भरत-मिलन के लिये व्याकुल हो रहा था, पर बाहर वह मुनि-मंडली के साथ बैठे शान्त, स्थिर तथा प्रसन्न भाव दिखला रहे थे :

कर कमलनि धनु सायक फेरत, जिय की जरनि हरत हँसि हेरत।

लसत मंजु, मुनि-मंडली मध्य सीय रघुनंद।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे भक्ति सच्चिदानन्द।

भरत की व्याकुलता स्त्री प्रकृति के समान उद्दाम और वेगशील थी। यही कारण था कि पुरुष और प्रकृति की तरह इन दो प्रेमियों का पारस्परिक प्रेम इतना प्रबल था। भरत जब प्रेमोन्माद से विह्वल होकर राम के बिलकुल सन्निकट आकर :

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं, भूतल परे लकुट की नाईं।

तो स्थितप्रज्ञ राम की स्वाभाविक धीरता भी प्रेम-प्रवाह में बह चली और :

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा, कहुं पट कहुं निषंग धनु तीरा।

और उन्होंने आनंदमग्न होकर गद्‌गद् हृदय से भरत को गले लगा लिया। वह अलौकिक और स्वर्गीय प्रेम सचमुच अवर्णनीय है। और तुलसीदास ने ठीक ही कहा है :

मिलन प्रीति किमि जाइ बखानी, कविकुल अगम करम मन बानी ।

चण्डीदास के शब्दों में कहना पड़ता है :

एमन पिरीति कभु देखि नाई शुनि ।
पराणे पराण बांधा आपना आपनि ।

ऐसा प्रेम न कभी देखा न कभी सुना, जिसमें एक प्राण (किसी रहस्यमय प्राकृतिक नियम से) अपने आप दूसरे प्राण के साथ आकर बँध गया ।

अर्थात् :

परम प्रेम पूरण दोउ भाई, मन बुधि चित अहमिति बिसराई ।

अन्त में उद्धृत तुलसीदास के इन दो पदों में सब प्रकार के सांसारिक तथा पारमार्थिक प्रेम की परिपूर्णावस्था—सृष्टि के मूल में स्थित प्रेम-बीज के विकास की चरम परिणति · का अन्तिम रहस्य अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रस्फुटित हुआ है । इसमें साधारण प्रेमिक-प्रेमिका से लेकर प्रकृति और पुरुष, शिव और शक्ति, भक्त तथा भगवान के अनन्त सनातन प्रेम का सार आ गया है । वास्तव में भरत और राम के प्रेम वर्णन में तुलसीदास ने जिस अनुपम भक्त-कला का परिचय दिया है वह संसार साहित्य के सब प्रकार के प्रेम वर्णन से निराला है ।

हमारी नयी प्रकाशन योजना

भारतीय साहित्य-माला

हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का पद मिल गया है और अब हिन्दी की पुस्तकों के भण्डार की ओर लोगों की निगाहें उठने लगी हैं। हिन्दी में अनमोल ग्रन्थों की कमी नहीं, लेकिन राष्ट्र-भाषा होने के कारण अब हिन्दी का क्षेत्र असीम हो गया है। हिन्दी के अलावा भारतवर्ष की अन्य विकसित भाषाओं का भी हिन्दी में समावेश करना बहुत आवश्यक हो गया है। हिन्दी की आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि हिन्दी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ कृतियों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जाय, और हिन्दी भाषी जनता को अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य का परिचय कराकर आपस के सबन्ध घनिष्ट बनाए जाएँ।

उपरोक्त आवश्यकता की पूर्ति के हेतु ही हमने इस **'भारतीय साहित्य माला'** का प्रकाशन प्रारंभ किया है। इस माला के अन्तर्गत उर्दू, बंगला, मराठी, गुजराती, तामिल, तेलेगु कन्नड़, उड़िया आदि सभी भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियों का अनुवाद हम छाप रहे हैं।

यह केवल योजना ही नहीं है बल्कि कुछ पुस्तकें प्रकाशित भी हो चुकी हैं। अब तक उर्दू, मराठी, गुजराती और बंगला की कुछ पुस्तकें हमने छाप कर पाठकों के लिये सुलभ भी कर दिया है। इन पुस्तकों की सूची हमारे कार्यालय से मंगाई जा सकती है।

हम आशा करते हैं कि समस्त हिन्दी संसार हमारी इस योजना को पसन्द करेगा तथा सक्रिय सहयोग देकर इस योजना को सफल बनायेगा ताकि हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाओं का आपसी संबंध घनिष्ट हो सके और हिन्दी के भंडार की भी वृद्धि हो सके।

प्र का श न

२ मिंटो रोड : इलाहाबाद-२